॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

श्रीसद्गुरुकबीर भजन संग्रह

प्रकाशक—
डॉ० स्वामी सदानन्द शास्त्री

प्रथम आवृत्ति
मई १९८२

मूल्य तीन रुपये मात्र

सार शब्द

(१) लोहहि चुम्बक प्रीति है, लोहा लेत उठाय ।
ऐसा शब्द कबीर का पल में लेत छुड़ाय ॥

… संत को दोय ।
… ाय ॥

… ाहिं ।
… ाहि ॥

… जान ।
… मान ॥

… ताय ।
… जाय ॥

… जाय ।
… हाय ॥

… सार ।
… पार ॥

… फेर ।
माला श्वांस उश्वास का, … मेर ॥

(९) जल परमाने माछली, कुल परमाने शुद्धि ।
जाको गुरु जैसा मिला, ताको तैसी बुद्धि ॥

—— ० ——

प्राक्कथन

सद्गुरुकबीर की आप्तवाणी से उनके जीवन काल में ही भारतीय जनता कृत कृत्य हुई थी। उनके द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को परस्पर द्वेष भाव मिटा कर सन्मार्ग पर चलने हेतु एक सहज प्रकाशपुञ्ज-स्तम्भ का अवलम्बन मिला था। आज उस प्रकाश को धारण कर विदेशी भी अपने को आलोकित करने हेतु लालायित हैं। श्रीसद्गुरु के उपदेश 'बीजक' रूप में तो मिल जाते हैं किन्तु सर्व ग्राह्य नहीं है। भजन रूप में तो सर्वथा अनुपलब्ध हैं, पूज्य चरण श्री स्वामी हनुमानदास साहब षट्शास्त्री जी ने कृपा कर एक बार "शब्दामृतसिन्धु" नाम से भजन संकलन कर प्रकाशित कराया था, वह भी आज अप्राप्य है।

भक्तजनों, शोधछात्रों एवं भजन-प्रेमियों की उत्कट चाह को देखते हुए मेरे मन में श्री स्वामी जी के शब्दामृत–सिन्धु को ही पुनः प्रकाशित कर सर्वजन सुलभ कराने की हार्दिक इच्छा है, लेकिन अर्थाभाव के कारण उसी से चुने हुए छात्रोपयोगी, उपदेशात्मक एवं संगीत प्रधान गेय भजनों का ही यह लघु-संग्रह प्रकाशित करा कर आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं। भविष्य में यदि बन पाया तो समस्त भजन संग्रह गूढार्थ टीका सहित प्रकाशित कराकर आप लोगों की सेवा में प्रस्तुत किया जायेगा।

अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि ये सभी भजन श्री कबीर साहबकृत ही हैं, यह कथन संदेहात्मक है। परन्तु ऐसे संदेहास्पद भजन भी न केवल प्रसिद्धि प्राप्त है अपितु दूध और जल के समान अपृथक से हैं, इसलिए ऐसे भजनों को इस संग्रह में निहित कर लिया गया है।

मैंने अपने शोध ग्रंथ "हिन्दीकविकबीरसिद्धान्तस्याद्वैतवेदान्तेन सह साम्यम्" में शब्दामृतसिन्धु से जो भजनांश उद्धृत किए हैं, उन्हें भी पूर्णरूपेण उत्तरार्ध में प्रस्तुत किया गया है। यह भजन-प्रेमियों के साथ-साथ उक्त ग्रन्थ अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होंगे।

आशा है पाठकगण इससे भरपूर लाभ उठायेंगे।

—स्वामी सदानन्द शास्त्री

भजन-सूची



सद्गुरु कबीर भजन संग्रह

भजन १

सतगुरु शरण हंस[१] जब आवे, तबहि परमपद[२] पावे हो।
सतगुरु भेद[३] हंस जो पावे, अनहद नाद बजावे[४] हो।।
गंगा–यमुना[५] मिले सरस्वति[६], तिरबेनी[७] मध न्हावे हो।
पूरा सतगुरु अलख[८] लखावे, करम भरम बिसरावे[९] हो।।
सहज समाधि निरन्तर लावे, पुनर्जन्म नहिं आवे हो।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सारहि शब्द समावे हो।।

भजन २

बिनु सतगुरु नर फिरत भुलाना।।
इक केहरि सुत लाय गड़ेरिया, पालपोस के कियो सयाना।
रहत अचेत फिरत अजयन संग, अपना हाल कछू नहिं जाना।।

---

(१) मुमुक्षु जीव, (२) मुक्ति (३) भजन का मार्ग (४) बिना कान में अंगुली दिये ही अनहद ध्वनी सुनाता है। (५) इंगला पिंगला नाड़ी। (६) सुष्मना। (७) त्रिकुटी। (८) मन इन्द्रियों से परे आत्मतत्त्व (९) कर्मों में लिप्त नहीं होता है। यथा—"ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि दग्धसात् कुरुतेऽर्जुनः।

इक केहरि सुत आय जंगल से, देखत ताहि बहुत सकुचाना।
पकड़न भेद तुरत उन दीन्हा, आपन दशा देख मुसकाना।।
मिरगा नाभि बसे कस्तूरी, यह मूरख ढूढत चौगाना।
करत सोच पछतात मनहिं मन, यह सुगन्धी कहाँ ते आना।।
अर्ध ऊर्ध बीच डोरी लागी, रूप चखा नहिं जात बखाना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! जाको सुरनर मुनि धर ध्याना॥।।

भजन ३

जियरा जाहुगे हम जानी ।।

राज करन्ते राजा जइहैं, रूप करन्ते रानी।
चान्दो जइहै, सूर्यो जइहैं, जइहैं पवन औ पानी ।।
मानुष जन्म अहै अति दुर्लभ, तुम समझो अभिमानी।
लोभ नदी की लहर बहत है, बूडोगे बिनु पानी ।।
जोगी जइहैं जंगम जइहैं, औ जइहैं बड़ ज्ञानी।
कहैं कबीर एक सन्त न जइहैं, जिनके चित ठहरानी ।।

॥भावार्थः—सद्गुरु की कृपा के बिना मनुष्य सांसारिक वस्तु में भूल गया है। अपना सच्चा स्वरूप नहीं पहिचान पाया और अपने को विषयादिकों का दास मान कर दुःखी होता रहा। जैसे एक शेर के बच्चा को भेड़िहर पाल कर भेड़ के समान रखता है और दूसरे शेर जब उसे अपने स्वरूप का ज्ञान करा देता है तो वह पुनः शेर जैसा ही व्यवहार करता है। यही हाल कस्तूरी मृग का भी है। वैसे ही अज्ञानी प्राणी की दशा है। सद्गुरु कृपा होते ही वह अपना स्वरूप समझ जाता है।

भजन ४

जग में या विधि साधु कहावै ।
दया स्वरूप सकल जीवन पर, और[1] दृष्टि नहिं आवै ।
झलकत[2] दशा ब्रह्म की जामें, सबही के मन भावै[3] ।
शीतल बचन[4] सर्व सुखदायी, आनन्द प्रेम बढ़ावे ॥
जाको निशदिन प्रेम[5] भक्ति है दूजा देव[6] न ध्यावै ।
कहैं कबीर हम वा घट परगट आप अपन पौ पावै ॥

भजन ५

जनम धरि जो न किया सत्संग ॥
ताको केवल पशु करि मानो, यदपि मानुष का अंग ॥
करत अहार[7] निद्रा भय मैथुन, लाग्यो विषय सुरंग ।
वा में अजहुँ न चेत्यौ मूरख, काल करेगा भंग ॥
काह भयो पीताम्बर पहिरे, चढ़े कुँ हस्ति तुरंग ।
वा में क्या बड़ाइ नर देखी, फूल्यो हृदय उमंग ॥
निर्मल चित्त करि कभी न न्हायो, सन्त स्वरूपी गंग ।
कहैं कबीर नर क्यों करि पावै पूरण रूप अभंग ॥

---

(१) राग-द्वेषयुक्त भेदर्दादृष्ट न रखे । (२) आसक्ति रहित समभाव । (३) ब्रह्मात्मा से भिन्न देवादि की पूजा न करे । (४) जिनकी वाणी शान्ति और आनन्द को देने वाला है । (५) जिनके हृदय में प्रेमभक्ति प्रभु की दिव्य ज्योति में है । (६) देवता देवी सिद्धियों के पीछे नहीं पड़ते । ऐसे सन्त के हृदय में आत्म ज्ञान या ईश्वर प्रकट होता है ।

(७) आहारनिद्रा भयमैथुनश्च सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम् ।
ज्ञानं हि तेषां अधिको विशेषः ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना ॥

भावार्थ—जिसने मनुष्य शरीर पाकर सत्संग द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया वह सम्पूर्ण सुखों को भोगने के बाद भी पशुवत ही रहा ।

भजन ६

मन लागा राम फकीरी में ।
जो सुख देखा राम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में ।
भली बुरी सबकी सुनि लीजै, कर गुजरान गरीबी में ।।
प्रेम नगर[१] में रहनी हमारी, भल बनि आइ सबूरी[२] में ।
जो रस होवै गागर[३] निमुआ, सो रस नाहि जमीरी[४] में ।।
हाथ में कुण्डी[५] बगल में सोंटा, तीनों लोक जगीरी में ।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो ! साहब मिले गरीबी[६] में ।।

भजन ७

तैं तो मेरी[७] लगन लगाय रे फकिरवा ।।
सोवत रही मैं अपने मन्दिर में, शब्द सुनाय जगाय रे फकिरवा ।
बूड़त रहि भव सागर में, बाँह पकड़ समुझाय रे फकिरवा ।।
एकहि बचन दूसरा नाहीं, मेरा फन्द छुड़ाय रे फकिरवा ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, राम नाम गुण गायरे फकिरवा ।।※

---

(१) प्रभु की प्रीति में या सम्पूर्ण प्राणी से समभाव का प्रेम । (२) संतोष । (३) छोटा निबू (कागजी) । (४) अमीरीपन की बड़ाई में । (५) भिक्षा का पात्र (६) सबका अभिमान छोड़ कर दीन हीनवत् निरभिमानता में ।

※ अर्थ–हे फकीर साधुरूप में उपदेशक गुरू आपने हमारी मनोवृत्ति को प्रभु के प्राप्ति की लगन में लगा दिया । मैं आत्मा रूपी स्त्री अज्ञानरूपी निद्रा में अपने शरीर रूपी मन्दिर में सो रही थी । आपने प्रभु आकर्षण के ऐसे उपदेश दिया कि मैं जग गई, मोह निद्रा समाप्त हो गई । मैं संसाररूपी समुद्र में डूब रही थी उसी में निमग्न रहती थी आपने बाँह पकड़ कर सही मार्ग पर लगा दिया समझा दिया कि यह संसारिक सुख का मार्ग चौरासी लाख योनी में भटकायेगा । अतः सत्य परमात्मा कोजानकर उससे परिचय करो तदाकार

भजन ८

मत बाँधो गठरिया अपजश की ।।
जब यमराजा लेन को आवै, मगरूरी निकसे नस नस की ।
जो सतगुरु का ध्यान लगावे, मिटै चौरासी मानुष की ।।
ह्वै निर्भय परम पद पावै. फाँसी कटि जाय तिसकी ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो चूवत बून्द अमी रस की ।।

भजन ९

करो न कोई यह मन की परतीत[1] ।।
थाह बताइ बुड़ावत भव में, बनि हितकारी मीत ।
गनै न उदय अस्त निशिवासर, छाँह धूप जल शीत ।।
भटकट फिरै निरन्तर चहुँदिशि, ऐसो महा पलीत ।
स्वर्ग पताल जाय एक पल में, कपि सम अति निर्भीत ।।

कराकर संसार बन्धन छुड़ा दिया । सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तों सज्जनों ! सुनो और उसकी साधना करो और सत्य परमात्मा के नाम से स्नेह कर उन्हीं का गुण गावो । तब संसार समुद्र से पार हो सकोगे ।

यहाँ 'सोवत रहीं' स्त्री वाचक शब्द रहस्यवाद का द्योतक है । यहाँ आत्मा ही स्त्री रूप से और परमात्मा सद्गुरू ही पतिरूप में अभिव्यंजित है । अतः श्री कबीर साहब एक ही वचन द्वारा संकेत करते हैं कि एक परम पिता परमात्मा के समझ लेने पर संसार का बन्धन छूट जाता है आसक्ति ही बन्धन का कारण है, वह बिना समझे दूर नहीं हो सकता । इसीलिए कहते हैं कि मनुष्य योनि में आकर जो व्यक्ति नहीं जगा, जिसकी लगन नहीं लगी उसकी क्या दशा होती है ।

१. भावार्थ–मन के ऊपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये । मन ने सभी को धोखा दिया । अतः मन में तरंग उठने पर उसे विचार कर और गुरु जनों से पूछ कर ही कार्य करे ।

गण गन्धर्व असुर सुर किन्नर, सबको लीना जीत।
ऋषि मुनि योगी वनवासी, तपसी सिद्ध अतीत ॥
छल्यो सकल ज्ञानी विज्ञानी, बहुविधि करि अनरीत ॥
सुनै न एक सीख काहू की, गावे अपनी गीत।
कहैं कबीर डरै यह तिन से, जिनकी गुरु से प्रीत ॥

भजन १०

जग में तुम सम कौन अनारी।
चहत बुझावन काम अग्नि को, विषय भोग घृत डारी ॥
रह्यो सदा झूठे झगरन में, शठ प्रभु नाम विसारी।
खायो पियो अगाय पेट भरि, सोयो पाँव पसारी ॥
तृष्णा के वश भटकत डोल्यो, निशि वासर झख मारी।
छल परपञ्च कपट फैलावत, उमर गमाई सारी ॥
कबहु न सुमति आइ उर तनिकहुँ, देख्यो आँख उघारी।
अन्त समय यम दूत आय के, का गति करहिं हमारी ॥
अजहूँ मानु सीख सन्तनकी, भाव भक्ति उर धारी।
गहु गुरु शरण तरण भवसागर, कहैं कबीर पुकारी ॥

भजन ११

समय यह नीको बीतो जात।
पल पल छन छन घरी पहर ह्वै दिवस सांझ परभात ॥

फूटे घट जिमि वारि आयु तिमि, क्षीण होत दिन रात ।
तापर जरा[1] बाघिनी के सम, आवत है (ही) अकुलात[2] ॥
विविध प्रकार रोग शत्रु गण, मारि मारि के लात ।
करत प्रहार बज्र जिमि तन पर, यहि नाना उत पात[3] ॥
मुखमें दाँत रहे नहीं एकहु, शिथिल[4] होय (होत) सबगात ।
देखि न परै नयन से मारग. तृष्णा तहुँ (तऊ) न बुढ़ात ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो ! एक हमारी बात ।
मन बच कर्म नाम आराधो, जो चाहो कुशलात ॥

भजन १२

साधो ! एक आप सब माहीं ।
दूजा करम भरम है किरतम, ज्यों दर्पण में छाँहीं ॥
जल तरंग ज्यौं जल ते उपजे, फिर जल माँहि रहाई ।
काया झाईं पाँच तत्त्व की, विनशे कहाँ समाई ॥
या विधि सदा देह गति सबकी, या विधि मनहिं विचारो ।
आपा होय न्याय करि न्यारो, परम तत्त्व निरुवारो ॥

---

(१) वृद्धावस्था शेरनीवत् झपट कर आती है। (२) आते ही व्याकुल कर देती है । (३) अनेकों प्रकार के रोग, शोक संताप बज्र के शूल की भाँति रह रह कर बुढ़ापे में सताते हैं यही भयंकर उपद्रव है कि अन्त में भजन भी नहीं हो पाता । (४) सब इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाने से पूर्ववत् कोई काम नहीं कर पाती हैं । तब भजन कैसे करोगे ?

कबीर साहब कहते हैं कि मन, वाणी और कर्म द्वारा प्रभुनाम स्मरण करो तभी, कुशल होगा ।

सहजे रहै समाय सहज में, ना कहुँ आय न जावै ।
धरै न ध्यान करै न जप तप, राम रहीम न गावै ॥
तीरथ व्रत सकल परित्यागे, शून्य डोर नहिं लावै ।
यह धोखा जब समुझि परै, तब पूजै काहि पुजावै ॥
योग युक्ति में भरम न छूटै, जब लग आप न सूझै ।
कहहिं कबीर सोइ सतगुरु पूरा, जो कोइ आपा बूझै ॥*

भजन १३

साधो ! हर में हरि को देखा ॥
आप माल औ आप खजाना, आपे खरचन वाला ।
आप गली गलि भिक्षा मांगे, लिये हाथ में प्याला ॥
आपहि मदिरा आपहि भाठी, आप चुवावन वाला ।
आप सुराही आपे प्याला, आप फिरै मतवाला ॥
आपहि नैना आपहि सैना, आपहि कजरा काला ।
आप गोद में आप खेलावे, आपे मोहन माला ॥
ठाकुर द्वारे ब्राह्मण बैठा, मक्का में दरवेशा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! हरि जैसा को तैसा ॥

---

*भावार्थ—सद्गुरु साहब का उपदेश है कि यह आत्मा ही सब में उसी प्रकार व्यापकरूप से विद्यमान है दूसरा नहीं । जिस प्रकार जल तरंग और जल भिन्न भिन्न स्वरूप नहीं हैं । किन्तु लोग धोखे में पड़ कर भेद दृष्टि करके राग द्वेष में और विभिन्न नाम रूप में फँसे हैं ।

भजन १४

हंसा छाड़ु करम की आशा ।।
कर्म काल सब जगत नचावै, फिर फिर करै गरासा ।
उपजन विनशन कर्महि कहिये, कर्महि जगत विनाशा ।।

कर्महि काल व्याल पुनि कर्महि, कर्महि का सब त्रासा ।
जप तप कर्म बांध जग राखै, पाप पुण्य विश्वासा ।।

कर्महि देवल तीरथ कहिये, कर्महि अलह उदासा ।
कर्महि दुख सुख जड़ चेतन है, तीनों लोक प्रकाशा ।।

कर्महि देइ लेइ पुनि कर्महि, यज्ञ दान रह वासा ।
प्रतिमा भूत कर्म के वश है, चारु विचार निवासा ।।

कर्म दुखी दारिद्री कहिये, कर्महि भोग विलासा ।
कर्म विकार राह तजि बैठो, कहैं कबीर सुखरासा ।।

भजन १५

सुरति से देख ले वह देश ।।
देखत देखत दीखन लागे, मिट गौ सब अन्देश ।।

न वहाँ चन्दा न वहाँ सूरज नहीं पवन परवेश ।
न वहाँ जाप नहीं वहां अजपा, नहीं अक्षरलवलेश ।

वहाँ के गये बहुरि नहिं आये, न कोई कहत संदेश ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, गहु सतगुरु उपदेश ।।

भजन १६

जहाँ से आये अमर वह देशवा ।।
नहिं तहां धरती न पवन अकशवा, न वहां चन्द न सुरज परकसवा ।
न वहां ब्राह्मण शुद्र न शेखवा, निराकार नहिं गौरि गणेशवा ।।
न वहाँ ब्रह्मा विष्णु महेशवा, न योगी जंगम दरवेशवा ।
कहैं कबीर ले आय संदेशवा, सार शब्द गहु चल वह देशवा ।।

भजन १७

रहना नहिं देश विराना है ।।
यह संसार कागद की पुड़िया, बुन्द पड़े घुल[1] जाना है ।
यह संसार कांटे की बाड़ी उलझ[2] उलझ मर जाना है ।।
यह संसार झाड़ औ झांखर, आग लगे जरि जाना है ।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ।।

भजन १८

घूंघट[3] के पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे ।।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे ।
धन जोवन का गर्व न कीजै, झूठा पंच रंग चोल[4] रे ।।
शून्य महल में दियना बारिले[5], आसन से मत डोल रे ।
जोग जुगत[6] से रंग[7] महल में, पिय पायो अनमोल रे ।।
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ।।

(१) गल जाना । (२) फँस कर । (३) अविद्या भ्रम का पर्दा । (४) पाँच तत्त्व का शरीर (५) हृदय में ज्ञान रूपी दीपक जला । (६) सत्य असत्य विवेक द्वारा । (७) आतमा परमात्मा के मिलन स्थल (ब्रह्मरन्ध्र) ।

भजन १९

हंसा हंस मिले सुख होई।
यहां तो पांती है बगुलन की, कदर न जानै कोई॥

जो हंसा तोहि प्यास क्षीर की, कूप नीर नहिं होई।
यह तो नीर सकल ममता के, हंस तजा जस चोई[1]॥

षट दर्शन पाखण्ड छियानवे, वेष धरे सब कोई।
चार वरण औ वेद किताबें, हंस निराला होई॥

यह यम तीन लोक का राजा, बांधे अस्त्र संजोई।
शब्द जीत चल हंस हमारे, तब यम रहिहैं रोई॥

कहैं कबीर प्रतीत मान ले, जीव नहिं जाल बिगोई।
लै बैठारो अमर लोक में, आवागमन न होई॥

भजन २०

यतन बिनु मिरगन खेत उजारे॥
पाँच भिरग[2] पचीस मिरगिनी[3], तिन में तीन चित्तारे[4]।
अपने अपने रस के भोगी, चरते न्यारे न्यारे॥
पाँच डार[5] सुगन की आई, उतरे खेत मँझारे।
हा हा करत बाल ले भागे, टेरि रहे रखवारे॥
सुनियो रे हम कहत सबन को, ऊँचे हाँक हंकारे।
यह नर देह बहुरि नहिं पैहौ, काहे न रहत संभारे॥
तन कर खेती मन कर बाड़ी, मूल सूरत रखवारे॥
ज्ञान बाण औ ध्यान धनुष करि क्यों नहिं लेत संभारे।
सार शब्द बन्दूक सुरति धरि, मारो तीन चितारे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, उबरे खेत तिहारे॥

---

(१) दूध का असार पानी। (२) पंच तत्व। (३) पच्चीस प्रकृति। (४) तीन गुण। (५) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

भजन २१

नर तै क्या पुराण पढ़ि सुनि कीन्हा ।
अनपावनी भक्ति नहिं उपजी, भूखै दान न दीन्हा ।।
पूज शिला चन्दन घसि लावै, बक ज्यों ध्यान लगावै ।
अन्तर गत के राम न चीन्हैं, थोथे घण्ट बजावै ।।
काम न विसरा क्रोध न बिसरा, लोभ न छूटा देवा ।
पर निन्दा मुख ते नहिं छूटी, निष्फल भई सब सेवा ।।
बाट पारि घर मूस विरानी, पेट भरे अपराधी ।
जिहि परलोक जाय अपकीरति, सोइ विद्या अति साधी ।।
हिंसा तो मन ते नहिं छूटी जीव दया नहिं पाली ।
परमानन्द साधु संगति मिलि, कथा पुनीत न चाली ।।
कहहिं कबीर सन्तन की महिमा,परम पुनीत सुहाई ।
आपा मेटि आपा को चीन्हो; तबे परम पद पाई ।।

भजन २२

बहुरि नहि आवना यह देश ।।
जो जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं संदेश ।
सुर नर मुनि औ पीर औलिया, देवी देव गनेश ।।
धरि धरि जनम सबे भरमें हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
योगी जंगम औ संन्यासी, दीगम्बर दरवेश ।।
चुण्डित मुण्डित-पण्डित लोइ, स्वर्ग रसातल शेष ।
ज्ञानी गुणी चतुर औ कवि, राजा रंक धनेश ।।
कोइ रहीम कोइ राम बखाने, कोइ कहै आदेश ।

नाना वेष बनाय सबन मिलि, ढूँढ़ि फिरै चहुँ देश ॥
कहैं कबीर अन्त न पैहौं बिनु सद्गुरु उपदेश ॥*

भजन २३

साधो ! जीवत की करु आशा ॥
जीवत समझे जीवत बूझे, जीवत मुक्ति निवासा।
जीयत कर्म की फांस न काटी, मुये मुक्ति की आशा ॥
तन छूटे जिव मिलन कहत हैं, सो सब झूठी आशा।
अबहुँ मिला सो तबहुँ मिलेगा, नहिं तो यम पुर बासा ॥
दूर दूर ढूँढ़ै मन लोभी, मिटै न गर्भ तरासा।
साधु सन्त की करै न सेवा, काटै यम की फांसा ॥
सत्य गहै सतगुरु को चीन्है, राम नाम विश्वासा।
कहैं कबीर साधन हितकारी, हम साधुन के दासा ॥@

भजन २४

जा दिन मन पंछी उड़ जैइहैं।
ता दिन तेरे तन तरूवर के, सबे पात झरि जइहैं।
या देही का गर्व न कीजै, स्यार काग गिध खइहैं।

---

*भावार्थ—छोटे से बड़े, ज्ञानी और धनाड्य हर प्रतिभा के लोगों ने परम तत्व की हर विधि खोज की लेकिन सद्गुरु के उपदेश बिना असफल रहे, अतः सदगुरु की शरण में जाना चाहिए।

@आशय—मृत्यु के बाद मुक्ति पाने की अभिलाषा निरर्थक और यमपुरी वास दिलानेवाला है अतः जीवनकाल में ही कर्मों के बन्धन काटने के उपयोगी साधन साधु सन्तों की संगति और सेवा करनी चाहिए; सत् के ग्रहण करे गुरु को पहिचाने और रामनाम पर विश्वास करें—यही जीवन का सार और मुक्ति का दाता है।

तन गति तीन विष्ठा कृमि ह्वै, नातर खाक उड़इहैं ।
कहँ बड़ नैन कहाँ वह शोभा, कहँ वह रूप दिखइहैं ।।
जिन लोगन ते नेह करत है, तेई देखि घिनइहैं ।
घर के कहत सबेरे काढ़ो, भूत होय धरि खइहैं ।।
जिन पूतन को बहु प्रति पाल्यो, देवी देव मनइहैं ।
ते लइ बाँस दियो खोपरि में, शीश फोरि बिखरइहैं ।।
अजहूँ मूढ़ करै सत्संगति, सन्तन में कछु पइहैं ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, आवागमन नशइहैं ।।*

भजन २५

मोको[1] कहाँ ढूढ़ै बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।।
ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकान्त निवास में ।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काशी कैलास में ।।
ना मैं जप में ना मैं तप में, ना मैं बरत उपवास में ।
ना मैं क्रिया[2] कर्म में रहता, नहीं योग सन्यास में ।।
नहीं प्राण[3] में नहीं पिण्ड में, ना ब्रह्माण्ड आकाश में ।
न मैं त्रिकुटी भँवर[4] गुफा में, सब श्वासन की श्वास में ।।
खोजी[5] होय तुरत मिलि जाऊँ, एक पल की तलास[6] में ।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, मैं तो हूँ विश्वास[7] में ।।

---

*भावार्थ—मरने के बाद इस शरीर के सम्बन्धी ही इस शरीर से भय और घृणा करने लगते हैं अतः देह सम्बन्धित सब कुछ नश्वर समझना चाहिये और विचार कर सत्संग में गुरुशरणागति प्राप्त कर ज्ञान प्राप्त करना ही आवागमन से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है ।

(१) सर्वात्मा, साक्षी । (२) शास्त्रीय रीति से नित्य कर्म, और व्यावहारिक कार्य । प्राणायाम में नहीं मिलता नही हृदयाकाश और ब्रह्मरन्ध्र में, इनको चीरने पर स्थान खाली है । (३) त्रिकुटी और सहस्राधार तथा प्राण वायु में नही हूं इन सबका साक्षी हूँ । (५) जानने वाला जिज्ञासु जीव । (६) अपने स्वरूप को जान लेने पर । (७) सद्गुरु कहते हैं कि प्रभु तो विश्वास में मिलते हैं ।

भजन २६

जब ते मन परतीति भई है।
दिन दिन अवगुण छूटन लागे, बाढ़न लागी प्रीति नई है॥
सुखसागर मुख मंजन कीन्हा, स्वाति बुन्द निज सीप लई है।
मानिक पुर में मोती उपजै, हीरा हंसा भेंट भई है॥
सुरति निरति दौ ज्ञान जौहरी, निरखि परखि निज वस्तु लई है।
थोरा बनिज बहुत भइ भारी, उपजन लागे लाल मई है॥
पायो दाव भाव वनि आयो, सतगुरु मिलगै साहु सही है।
बाढ़े बढ़े घटे न कबहूँ परम तत्त्व ले मान तई है॥
अगम निगम तत खोजि निरन्तर, गुरु सजीवन मूरि दई है।
कहहिं कबीर दया सतगुरु की, हती कुमति सब दूर भई है॥

भावार्थ—जब से परम तत्त्व पर पूर्ण विश्वास हो गया, उसी दिन से अपने आप हमारी बुराइयाँ हटने लगीं और प्रेम बढ़ने लगा। आनन्द समुद्र रूपी ब्रह्मानन्द में (सत्संग) आत्मारूपी मुख को शुद्ध किया। अन्त:करण में सदुपदेश रूपी स्वाती बुन्द मिल गया। बुद्धि रूपी सीप ने उसे धारण कर लिया। मन रूपी मानिकपुर में मोती सतोगुण का अनुभव हुआ तब जीव और परमात्मा का मेल हो गया। स्मरण ध्यान और त्याग द्वारा विवेकी जीव ने भली प्रकार समझ कर अपने में परमात्मा को पाया। थोड़ा सा साधन रूपी व्यापार किया और अमूल्य गुप्त धन आत्मा को पाया। गुरु कृपा से युक्ति बताने पर मनुष्य जीवन में समय पाकर मुक्ति पा लिया। मिलने पर कितना भी खर्च किया (प्रचार में दिया) घटता नहीं हैं। क्योंकि सजीवन मूल (युक्ति) गुरु कृपा से मिला और न जानने योग्य को खोज लिया। कबीर साहब कहते हैं कि जब सद्गुरु कृपा हो गई तब जो भी दुर्बुद्धि थी सब भाग गई।

भजन २७

भजन कर निश दिन टुटै न तार[1] ॥
एक ब्रह्म का सकल पसारा, छन छन पल पल लेहु सम्भार ।
या मन साधन संग लगावो, सोऽहं शब्द लगी रह तार ॥
सुमिरन भजन करो सतगुरु का, काया मध्ये है तत सार ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो ! बिनु सतगुरु ना होय उबार ॥

भजन २८

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जिहि आवै ॥
बिनु मुख नाम रटा करै, नहिं जीभ डुलावै ।
श्रवण बिनु धुन सुना करै, द्वौ नयन छिपावै ॥
अरध उरध मध कोठरी, तहँ ध्यान लगावै ।
तिरवेनी के घाट पर, हँसा नहवावे ॥
गगन महल पश्चिम दिशा, खिरकी खोलवावै ।
पानी पवन के गम नहीं, अमरित झर लावै ॥
चान्द सूर्य दिवसो नहीं, अस देश कहावै ।
साहब कबीर अस योगिया, काया मथि नावै ॥

भजन २९

सुमिरन बिनु गोला खाओगे ॥
मुठि बाँन्धे गर्भ से आया, हाथ पसारे जावोगे ।
जैसे मोती परत ओस के, बेर भये झरि जावोगे ॥
जैसे हाट लगावे हटवा, सौदा बिनु पछताओगे ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सौदा लेकर जाओगे ॥

---

(१) ऐसा अजपा जाप या सहज समाधि करो कि परमात्मा से एक क्षण भी सम्बन्ध न टूटे ।

भजन ३०

योगिया से मेरा दिल लागा ।।
जब से प्रीति लगी योगिया से, भयो हंस नहिं कागा ।
योगिया कारण योग कमाऊँ, आठ पहर रहूँ जागा ।।
जब तब योगिया मौज करत है, पाय अमर पद धागा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जरा मरण भ्रम भागा ।।

भजन ३१

सन्तों दृष्टि परे सो माया ।
वह तो अचल अलेख एक है, ज्ञान दृष्टि में आया ।।
सतगुरु दिये बताय आप में, माहीं सत सोई ।
दूजा किरतम थाप लिया है, मुक्त कौन विधि होई ।।
काया झाईं त्रिगुण तत्व की, विनशे कहवाँ जाई ।
जल तरंग जलही में उपजै, फिर जल माहि समाई ।।
ऐसी देह सदा गति सब की, मन में कोइ उचारै ।
आपे भयो नाम धर न्यारा, इस विधि देख विचारै ।।
आपे रहै समाय समुझ में, न कहूँ जाय न आवै ।
यह धोखा जब समझ परे तब, पूजै काहि पुजावै ।।
धरै न ध्यान करै न जप तप, राम रहिम न गावै ।
तीरथ वरत सकल भ्रम छोड़े, शून्य दौर ना जावै ।।
योग युक्ति से कर्म न छूटै, आप अपन ना सूझै ।
कहैं कबीर सोइ सन्त जौहरी, जो यह समुझे बुझे ।।

भजन ३२

सन्तों अब हम आपा[1] चीन्हा ।
निजस्वरूप प्राप्त है नितही, अचरज सहित स कीन्हा ।।

---

(१) सद्गुरु शरणागति होकर अभिमान रहित मुमुक्षु को गुरु कृपा से जब आत्मज्ञान हो जाता तब ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं ।

ना हम मानुष देवता नाहीं, ना गिरही वन खण्डी ।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यहु नाहीं, ना हम शूद्र न दण्डी ।।
ना हम ज्ञानि चतुर न मूरख, ना हम पण्डित पोथी ।
ना हम सागर न मरजीवा, ना हम सीप न मोती ।।
ना हम स्वर्ग लोक को जाते, ना हम नरक सिधारे ।
हम सब रूप सबन ते न्यारा, ना जीता ना हारे ।।
ना हम अमर मरे ना कबहूँ, कबीर ज्यों का त्यों ही ।
व्यास कपिल मुनि वामदेव ऋषि, सब का अनुभव यों ही ।।

भजन ३३

अपन पौ आपहि में पायो ।
शब्द हि शब्द भयो उजियारा, सतगुरु भेद बतायो ।।
जैसे सुन्दरी सुत लै सूती, स्वप्ने गयो हिराई ।
जाग परी पलंग पर पायो न कछु गयो न आई ।।
जैसे कुँवरी कण्ठ मणि हीरा, आभूषण विसरायो ।
संग सखी मिलि भेद बतायो, जीव को भ्रम मिटायो ।।
जैसे मृग नाभी कस्तूरी, ढूण्ढत बन बन धायो ।
नाशा स्वाद भयो जब वाके उलटि निरन्तर आयो ।।
कहाँ कहूँ वा सुख की महिमा, ज्यों गुंगे गुड़ खायो ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, ज्यों का त्यों ठहरायो ।।※

※भावार्थ—सत्संग और सद्गुरु के उपदेश के बिना अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता, जैसे—पलंग पर माता बच्चे के साथ रहती है, परन्तु स्वप्न में उसे खोई हुई देखती है और जागने पर बच्चा बगल में पाती है। ऐसे ही अज्ञान निद्रा दशा में जीव अपने को उससे भिन्न मानता है गुरु शब्द द्वारा ज्ञान होने पर अपने में आप को देख कर प्रसन्न हो जाता है।

भजन ३४

हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहें आजाद या जग में, हमन दुनियाँ से यारी क्या॥
जो विछुरे हैं पियारे से, भटकते दरबदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या॥
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर शिर पटकता है।
हमन गुरु नाम साँचा है, हमन दुनियाँ से यारी क्या॥
न पल विछुड़े पिया हम से, न हम विछुड़े पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या॥
कबीरा इश्क को माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन शिर बोझ भारी क्या॥

भजन ३५

चरखा तोर डारो, भजो राम के राजी॥
चरखा तेरी रंग बिरंगी, पोनी लाल गुलाब।
कातन वाली छैल छबीली, तन मन डारै तार॥
छोटकी ननदी चीकन पीसै, बड़की भरती पानी।
वह दहिजारा लिटी लगाइस, हम चरखा तर आनी॥
आय गमाय गमार परोसिन, हम चरखे की रानी।
एक बार चरखा जो कातूँ, दोहरी नथनि गढ़ानी॥
सात सेर की सात बनाए, चौदह सेर की एके।
वह दहिजारा सातो खाया, हम कुलवन्ती एके॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्वानी।
जो यह पद को अर्थ लगावै, ताको मुक्ति निसानी॥

अर्थ—यदि राम के राजी हो (राम की प्राप्ति में तुझे प्रसन्नता है) तो राम को भजो, और चरखा को तोर डारो (कर्म तन्तु के साधन देहाभिमान को छोड़ दो) । त्रिगुण का कार्य होने से तेरा चरखा (देह) बहुत रंग युक्त है इसमें पोनी (प्राण) लाल (राजस) है कि जिससे देह में गुलाल (शोभा कान्ति है, अथवा पोनी प्राण गुलाल (अबीर) के समान लाल है । और सूत कातने वाली (कर्मादि करने वाली) बुद्धि इन्द्रियाँ भी यदि छैल (युवती) छबीली (सुन्दर) रहती है; तो तन मन को तार डालती (सुखी करती) है । परन्तु सुमति कुमति (विद्या-अविद्या) रूप माया उसके दो ननद हैं, तिन में छोटकी ननद (सुमति) यद्यपि चीकन (सुन्दर) पीसती है (सुविचारादि करती है) तथापि बड़की (कुमति) पानी भरती है (विषयसंग्रह वासना की सिद्धि करती है) फिर वह अभागा मन लीटी लगाया (भोगासक्त हुआ) और चरखा के पास में हम (अहंकार) को आना (लाया) तव चरखों की रानी (बुद्धि) भी अहंकार देह के पास में आय कर, और उस गमार (अज्ञ) के परोसिन (सहवासिन) होकर अपने तत्व को गमाय दिया । और कहने लगी की एक बार भी यदि चरखा से सूत कातू तो दोहरी नथुनी गढ़ाऊँ (द्विगुण शोभा के साधन करूँ) और सात सेर के मानो सात द्वीपादि को बुद्धि ने बनाई हैं और चौदह भुवन रूप एक संसार का निश्चय किया है, तहाँ सात द्वीपादि में आसक्त मन को फटकारती है, और सब लोक की इच्छा आदि के लिये मनको उत्तेजित करती है, इससे निर्वाण पद के लिगे प्रथम ही अभिमान को त्यागना चाहिये इत्यादि ।

भजन ३६

मन हलुवाई हो नाम विमल पकवान ।।
काया कराही कर्म घृत, मन मैदा को सान ।
ब्रह्म अग्नि उदगारि के, अजव मिठाई छान ।।
तन हमारी ताखरी है, मन हि हमारी सेर ।
सुरति हमारी डाँड़िया, चित्त हमारो फेर ।।

गगनमण्डल में घर है, त्रिकुटी मोर दुकान।
रहनि हमारी उनमुनी, लागी वस्तु बिकान॥
लोभ लहर नदिया बहै, लख चौरासी धार।
बिनु गुरु साँकट बुड़िया, गुरुमुख उतरे पार॥
कहैं कबीर सुनु स्वामी तुम गति अगम आपार।
सन्तन लह्यो राम नाम, विष लह्यो संसार॥

भजन ३७

गुरु ने पठाया[१] चेला नई नियामत[२] लाना रे॥
पहली नियामत लकड़ी[३] लाना, जगल झाड़ के पास न जाना।
गीली [४]सुखी बचाय के चेला, गाँठी[५] बाँध के लाना रे॥
दुसरी नियामत जल[६] से आना, कुआँ बाव[७] के पास न जाना।
नदी[८] नाला बचाय के चेला, तुम्बा[९] भर के लाना रे॥
तिसरी नियामत (अन्न) आँटा[१०] लाना, ग्राम नगर[११] के पास न जाना।
कूटा पीसा[१२](खेत खलिहान)छाँड़ि के चेला, झोली[१३]भर के लाना रे॥
चौथी नियामत कलिया[१४] लाना, जीव जन्तु[१५] के पास न जाना।
मूवा[१६] जीवा छाड़ि के चेला, हण्डी[१७] भर के लाना रे॥
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद[१८] है निर्वाना।
जो यह पद का अर्थ[१९] लगावै, सोइ सन्त सुजाना॥

---

(१) सत्संग में लगाया। (२) अपूर्व पदार्थ=निष्काम कर्म और भक्ति। (३) ध्यान योग द्वारा दुर्वासना का लय। (४) राग द्वेष। (५) प्रेम और श्रद्धा की गांठ में बाँध कर। (६) विवेक। (७) स्मार्त कर्म, (८) लोक, परलोक। (९) पुरुषार्थ से पूर्ण। (१०) वैरागशमदमादि। (११) आश्रय रहित। (१२) नाशवान पदार्थ। (१३) बुद्धिरूपी झोली में। (१४) सद्गुरु के उपदेश से मधुर स्वर और तुरियावस्था। (१५) विभिन्न प्राणियों के संग छोड़कर। (१६) जन्म मरण। (१७) हृदय में। (१८) मोक्ष की अवस्था। (१९) उपरोक्त तत्त्वों का विचार मतन, आदि।

भजन ३८

दिवाने मन भजन बिना दुःख पैहो ॥

पहिला जनम भूत का पैहो, सात जनम पछतैहो।
काँटे पर लै पानी पैहो. प्यासन ही मरि जैहो ॥

दूजा जन्म सुवा के पैहो, बाग बसेरा लै हो।
टूटे पँख बाज मण्डाराने, अधफड़ प्राण गवैहो ॥ दिवाने··
बाजीगर के बानर होइ हो, लकड़िन नाच नचैहो।
ऊँच नीच से हाथ पसरिहो, माँगे भीख न पैहो ॥
तैली के घर बैला होइहो, आँखिन ढाप ढपैहो।
कोश पचाश घरे में चलि हो, बाहर होन न पैहो ॥
पँचवाँ जन्म ऊँट के पैहो, बिनु तोल बोझ लदैहो।
बैठै से ऊठे नहिं पैहो, घुरच घुरच मरि जैहो ॥
धोबी के घर गदहा होइहो, कटी घास ना पैहो।
लादि लादि आपु चढ़ि बैठे, ले घाटे पहुँचैहो।
पक्षी में तो कौवा होइहो. करर करर गुहरैहो।
उड़ि के जाय मैला पर बैठो, गहरे चोंच लगैहो ॥
सतगुरु की टेर न करिहो, मन ही मन पछतैहो।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नरक निसानी पैहों ॥ दिवाने ··

भजन ३९

मन तोहि केहि विधि कर समुझाऊँ ॥

सोना होय सोहाग मनाऊँ बंकनाल रसवाऊँ।
ज्ञान शब्द की फूंक लगाकर पानी कर पिघलाऊँ ॥
घोड़ा होय तो लगाम मगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ।
होय सवार तेरे पर बैठूं, चाबुक लेई चलाऊँ ॥ मन······

हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बधाऊँ।
होय महावत तेरे पर बैठूं, अँकुश देइ चलाऊँ॥
लोहा होये अरण मगाऊँ ऊपर धुआँ धुवाऊँ।
धूआँ की घनघोर मचाऊँ, यन्तर तार खिचाऊँ॥
ज्ञान न होय तो ज्ञान सिखाऊँ, सत्य की राह बताऊँ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, अमरापुर पहुँचाऊ।

भजन ४०

मन तू थकत थकत थकि जाई।
बिनु थाकै[१] तोर काज न सरिहैं, फिर पाछे पछताई।
जब लग तोर[२] जीव रहत है, तब लग परदा भाई।
टूटि जाय ओट तिनुका की, रसक[३] रहे ठहराई॥
सकल तेज तज होय नपुंसक, यह मत सुन ले मेरी।
जीवत मिरतक दशा विचारो, पावै वस्तु घनेरी॥
थाके परे और कछु नाहीं, यह मति सब से पूरा।
कहैं कबीर मार मन चंचल, हो रहु जैसे धूरा॥

भजन ४१

तेरि पानी बिच[४] प्यास न गई॥
बाहर[५] आके का सुख पाया, अन्दर[६] न लहर लई।
ऐसे सुख सागर के पाये, आश न पूरन भई॥
रे मन मूरख मीन अनारी, किन दुर्मति दई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, रहु आनन्द मई॥

---

(१) अभ्यास द्वारा मन की चंचलता दूर किये बिना।
(२) शरीराभिमान है। (३) सुखी
(४) आनन्दरूपी अमृत जल आत्माकार वृत्ति में तृप्त न हो सका।
(५) सांसारिकवृत्ति या सांसारिक सुख। (६) अपने अन्तः वृत्ति द्वारा।

भजन ४२

जानत कौन पराये मन की ।
हीरों की परख जौहरी जाने, लागत चोट सरासर घन की ।।
जैसे मिरग नाद के भेदी, बान खबर नहिं तन की ।
जैसे नारि पुरुष मन लावत, मूषत चोर खबर नहिं धन की ।।
सूर लड़ै और कायर कम्पे, शूर बिनु लाज रखे को रन की ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, खोज करो तुम अपने तन की ।।

भजन ४३

मन तोहि नाच नचावै माया ।
आशा डोरी लगाइ गले बिच, नट जिमि कपिहि नचाया ।
नावत शीश फिरै सबही को, नाम सुरत विसराया ।।
काम हेतु तुम निशि दिन नाचै, का तुम भरम भुलाया ।
नाम हेतु तुम कबहुँ न नाचै, जो सिरजल तोर काया ।।
ध्रुव प्रह्लाद अचल भये जासे, राज विभीषण पाया ।
अजहुँ चेत हेत कर पिय से, हे रे निलज बेहाया ।।
सुख सम्पति सब मान बड़ाई, लिखि के साथ पठाया ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गनिका विमान चढ़ाया ।।

भजन ४४

अरे मन बनियाँ बान न छोड़े रे ।
जनम जनम के मारा कूटा, अजहुँ न पूरा तोले रे ।
पासंग[1] में एक अटका[2] राखै, ऐंडा ऐंडी डोलै रे ।।
घर[3] में वाकी लगी बनिजिया, तनिक तनिक पर दौरे रे ।
लड़का[4] उसका बड़ा हरामी, अमरित में विष घोलै रे ।।
तूँ ही जल में तूँ ही थल में तूँ ही घट घट बोलै रे ।
कहैं कबीर वा शिष[5] से डरिये, हृदयक गाँठि न खोलै रे ।।

(१) पा+संग=अच्छे संग रूपी सत्संग पाकर । (२) सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति है । (३) हृदय रूपी घर में । (४) कामक्रोधादि । (५) कपटी शिष्य ।

भजन ४५

मन तूँ नाहक धूम मचाया ॥
करि स्नान ध्यान धरि बैठे, पाती फूल चढाया ।
मूरत से सबहि वर मांगे, अपने हाथ बनाया ॥
झूठे लेना झूठे देना, झूठे राह बताया ।
बाँझिन गाय दूध न देहैं, माखन कहँ से आया ॥
हिन्दू तुरुक पूजै दुइ देवा, जहँ तहँ तीरथ नहाया ।
तीरथ गये जीव भौ दुखिया, यह दुःख कहाँ समाया ॥
जिनके मन में साँच बसत है, साँचे से मन लाया ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नित उठ दरशन पाया ॥

भजन ४६

धुबिया[1] जल बिच मरत पियासा ॥
जल में ठाढ़ पिवै नहिं मूरख अच्छा जल है खासा[2] ।
अपने घट के मर्म न जानै, कर धुबियन[3] की आशा ॥
छिन में धोबिया रोवै, धोवै छिन्न में होय उदासा ।
आपै वरै कर्म की रस्सी, आपन गल की फांसा ॥
सच्चा[4] साबुन लेहिन मूरख, है सन्तन के पासा ।
दाग[5] पुराना छूटत नाहीं, धोवत बारह माशा ॥
एक[6] रती को जोर लगावै, छोड़ि दियो भरि माशा[7] ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, आच्छत[8] अन्न उपासा ॥

---

(१) अज्ञानी जीव (२) पर्याप्त मात्रा में । (३) अपने इष्ट देवादि या मायाजन्य वस्तु को । (४) सद्विवेक सत्संगादि । (५) विषय सुख की वासना (६) क्षणिक आनन्द के लिये । (७) परिपूर्ण परमानन्द । (८) अपने अन्दर है किन्तु जाने बिना दुखी हो रहा है ।

भजन ४७

रमैया की दुलहिन[१] लुटल बाजार ।
सुर पुर लूटा नर पुर लूटा तीन लोक परि हाहाकार ।
ब्रह्मा लूटे, महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पछार ।।
श्रृंगी की भिङ्गी[२] करि डारी, परासर के उदर विदार ।
कनफूका[३] चिद काशी लूटे, लूटे योगेश्वर[४] करत विचार ।।
हम[५] तो बचे सदगुरु कृपा से, शब्द डोरि[६] गहि उतरे पार ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, इस ठगिनी[७] से रहु हुशियार ।।

भजन ४८

अवधू माया तजि न जाई ।।
गिरिह त्याग के वस्तर बाँधा, बस्तर तज के फेरी ।
लड़का तजि के चेला कीन्हा, तहुँ मति माया घेरी ।।
जैसे बेली बाग में अरुझी, मांहि रहा उरझाई ।
छोड़े वह छूटे नाहीं कोटिन करे उपाई ।।
काम तजे तो क्रोध न जाई, क्रोध तजे तो लोभा ।
लोभ तजे हंकार न जाई, मान बड़ाई शोभा ।।
मन वैरागी माया त्यागी, शब्द में सुरत समाई ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह गम विरले पाई ।।

---

(१) माया (२) न्यून (छोटा) । (३) मात्र कान फूँककर मुक्ति बताने वाले घर-योगिया (४) योगिक त्राटक दिखाने वाला । (५) जिज्ञासु, ज्ञानी भक्त (६) अनाहद (७) अनेक रूप धारण करने वाली माया ।

भजन ४९

मुखड़ा क्या देखै दरपन में, दया धरम नहिं तन में ।।
गहरी नदिया नाव पुरानी, उतरन चाहे छन में ।
प्रेम की नइया पार उतर गई, पापी बूड़े जल में ।।
दर्पण देखत मोछ मरोरत, तेल चुवत जुलफन में ।
एक दिन ऐसा आन पड़ेगा, कागा नोचत बन में ।। मुखड़ा···
आम की डार कोइलिया बोलै, सुगना बोले बन में ।
घर वारी घरही में राजी, फक्कर राजी बन में ।।
सुन्दर तिरिया वीरा लावै, सेवा चाहै अंग में ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, ई का लरिहैं रन में ।। मुखड़ा···

भजन ५०

सन्तो मानुष तन बौराना ।।
इक बकरी का बच्चा लाये, ताहि खियावत दाना ।
शीश काटि धरनी पर देवें फिर माँगे वरदाना ।।
घर ही में इक मानुष मरिगो, उनको देख घिनाना ।।
जार फूक कोइला कर डारे, अवघट घाट नहाना ।
बाहर से इक मुरदा लाये, नोन तैल घी साना ।
ता मुरदे की बनी रसोई, घर भर करत बखाना ।।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्वाना ।
यह पद की जो निन्दा करिहैं, ताको नरक निदाना ।।

भजन ५१

झीनी झीनी[1] बिनी चदरिया[2] ॥
काहे के ताना, काह के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।
इँगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥
आठ कमल दल चरखा[3] डोलै, पाँच तत्त्व गुण तीनि चदरिया ।
साईं को सियत मास दश लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़िन ओढ़ि के मैली कीनि चदरिया ।
दास कबीर यतन[4] से ओढिन ज्यों का त्यों धरि दीनि चदरिया ॥

भजन ५२

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ॥
टुकड़े-टुकड़े जोड़ि युगुत सो, सीके अँग लिपटानी ।
कर डारी मैली पापन सो, लोभ मोह में सानी ॥
ना यहि लग्यो ज्ञान के साबुन, ना धोई भल पानी ।
सारी उमर ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिं जानी ॥
शंका मान जान जिय अपने, यह है जीव बिरानी ।
कहैं कबीर धरि राखु यतन से, फेर हाथ नहिं आनी ॥

भजन ५३

यह तन ठाँट तँबूरे का ॥
ऐंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का ॥
टूटे तार बिखर गई खूँटी, हो गौ धूरम धूरे का ॥
या देही का गर्व न कीजै, उड़ गौ हंस तँबूरे का ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! अगम पन्थ कोई शूरे का ॥

(१) सूक्ष्म वासना (२) स्थूल शरीर (३) हृदय कमल (पांच तत्व व तीन गुण) (४) निरभिमानी भक्त या आत्म ज्ञानी ।

भजन ५४

काया चलत प्राण क्यों रोई ।
तुम्हारे संग बहुत सुख कीन्हा, नित उठ मल मल धोई ।
तुम तो हंस चले घर अपने, हमको चलत बिगोई ।।
हंस कहे सुन काया बौरी, मेरो तेरो संग न कोई ।
तो से घट बहुतेरे छोड़े, संग न लागै कोई ।।
लट छिटकाये माता रोवै, खाट पकड के भाई ।
आँगन बैठि तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई ।।
शिव सनकादिक और ब्रह्मादिक, शेष सहस मुख जोई ।
जिन-जिन देह धरी दुनियाँ में, थिर नहिं रहिया कोई ।।
पाप पुण्य द्वौ जनम संघाती, समझ देख नर सोई ।
कहैं कबीर प्रभु पूरण की गति, बूझे बिरला कोई ।।

भजन ५५

साधो यह मुरदे का गाम ।।
पीर मरे पैगम्बर मरिगौ, मरिगौ जिन्दा योगी ।
राजा मरिगौ परजा मरिगौ, मरिगौ वैद्य और रोगी ।।
चन्दो मरिहैं सुरजो मरिहैं मरिहैं धरनि आकाशा ।
चौदह भुवन के चौधरि मरिहैं, इनहूँ की क्या आशा ।।
नव भी मरिगौ दश भी मरिगौ मरिगौ सहस अठासी ।
तैंतिस कोटी देवता मरिगौ, पड़ी काल की फाँसी ।।
नाम अनाम रहत है नितहीं, दूजा तत्त्व न होई ।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, भटक मरो मत कोई ।।❀

❀भावार्थ—जो जन्मा है अवश्य ही एक दिन उसका विनाश होगा । मात्र आत्म तत्त्व ही अविनाशी है ।

भजन ५६

एक दिन जाना होगा जरूर ॥

लक्ष्मण राम अमर जो होते, रहते हाल हजूर ।
वे भी जग में रहन न पाये, समुझ चेत नर कूर ॥
कुम्भकर्ण रावण बड़ योधा, कहत हते हम शूर ।
कठिन काल ने उनहूँ खाया, हो गये चकना चूर ।
अर्जुन से क्षत्रिय नहिं जग में, कर्ण दान भरपूर ॥
भीम युधिष्ठिर पाँचो पाण्डव, मिलगै माटी धूर ॥
पानी पवन अकाशो जैहैं, जैहैं चन्दा सूर ।
कहैं कबीर भजन कब करिहों, ठाढे काल हजूर ॥

भजन ५७

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो ।

चन्दन काठ के बनल खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो ॥
उठो रि सखी मोरी माँग समारो, दुलहा मोसे रुठल हो ।
आये यमराज पलंग चढ़ि बैठे नैनन असुआ छूटल हो ॥
चारि जना मिलि खाट उठाइन, चहुँ दिशि धू धू ऊठल हो ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो ॥

भजन ५८

तेरे घट में राम तू काहे भटके रे ॥

जैसे अगिनी बसत पथरी में, चमकत नहिं बिनु पटके रे ।
जैसे माखन रहत दूध में, निकसत नहिं बिनु झटके रे ॥
जैसे मधुर रस रहत ऊख में, निकसत नहिं बिनु कटके रे ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, हरि न मिलैं बिनु रटके रे ॥

भजन ५९

साधो शब्द सबन ते न्यारा, जानैगा कोई जानन हारा।
योगी यती तपी संन्यासी अंग लगाये छारा॥
मूल मन्त्र बिना सतगुरु के कैसे उतरे पारा।
योग यज्ञ व्रत नेम साधना, कर्म धर्म व्यवहारा॥
सो तो मुक्ति सबन ते न्यारी, क्यों छूटै यम द्वारा।
निगम नेति जाके गुण गावै, शंकर योग अधारा॥
ब्रह्मा विष्णु जिहि ध्यान धरत हैं, सो प्रभु अगम अपारा।
लागा रहै चरन सतगुरु के, चन्द्र चकोरक धारा॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो! निक सिख शब्द हमारा॥

भजन ६०

मेरा तेरा मनवाँ कहु कैसे एक होय रे॥
मैं कहता हूँ आँखन देखी, तूँ कहता है कागज लेखी।
मैं कहता हूँ सरुझावन हारी, तूँ राखै अरुझाय रे॥
मैं कहता हूँ जागत रहियो, तूँ रहता है सोय रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तूँ जाता है मोय रे॥
युगन-युगन समुझावत हारा, कही न मानै कोय रे।
तूँ तो रंडी फिरै विहंडी, सब धन डारा खोय रे॥
सत गुरु धारा निर्मल बहती, वामें काया धोय रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! तब ही वैसा होय रे॥

भजन ६१

जनि भूलो रे भाई लोगा, जनि भूलो रे भाई।
[1]खालिक-खलक[2]-खलक में खालिक सब घट रहा समाई॥
अल्ला एके नूर[3] उपाया, ताकी कैसी निन्दा।
ताहि नूर से सब जग कीया, कौन भला को मन्दा॥
ता अल्ला की गति नहिं जानो, गुरु गुड़ दीया मीठा।
कहैं कबीर मैं पूरा पाया, सब घट साहब दीठा॥

१. ईश्वर २. संसार ३. ज्ञान या प्रकाशक।

भजन ६२

तेरे घट में राम तूँ काहे भटके रे ।।
जैसे अगिनी बसत पथरी में, चमकत नहिं बिनु पटके रे ।
जैसे माँखन रहत दूध में, निकसत नहिं बिनु झटके रे ।।
जैसे मधुर रस बसत ऊख में, निकसत नहिं बिनु कटके रे ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, हरि न मिलैं बिनु रटके रे ।।

भजन ६३

साहेब तेरा भेद न जानै कोई ।।
पानी लै-लै साबुन लै-लै मल-मल काया धोई ।
अन्तर घट का दाग न छूटै, निर्मल कैसे होई ।।
या घट भीतर बैल बंधे हैं. निर्मल खेती होई ।
सुखिया बैठे भजन करत है, दुखिया दिनभर रोई ।।
या घट भीतर अगिन जरत है, धूम न परगट होई ।
कै दिल जानै आपना कै, जा शिर बीती होई ।।
जड़ बिनु बेलि-बेलि बिनु तुम्बा, बिनु फूले-फल होई ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! गुरु बिनु ज्ञान न होई ।।

आशय––सर्वात्मा साहब का रहस्य ज्ञान सबको न होने से बाह्य शरीर का प्राच्छालन ही श्रेय समझ लेता है लेकिन ज्ञानी के भीतर विचार-भजन चलने के कारण इसी देह में ज्ञानाग्नि प्रज्वलित होती है, विद्या धूम (चिह्न) अज्ञ को प्रगट नहीं होता । अज्ञानी के लिए बिना जड़ के (अनादि फल रहित) माया बेलि (लता) है, और सत्य बेलि बिना देहादि कार्य रूप तुम्बा है, तथा सत्य फूल बिना सुख दुःखादि रूप फल होते हैं । और जिस ज्ञान से इन सबका अभाव होता है, वह ज्ञान गुरु के बिना नहीं होता है ।

भजन ६४

साईं तेरे तकिया में जाना जरूर ।।
खांड चिरौंजी मन नहिं भावे, साईं तेरा टुकड़ा कबूल ।
साल दुसाला मन नहिं भावे, साईं तेरी गुदड़ी कबूल ।।
कोट अटारी मन नहिं भावे, साईं तेरी झुपड़ी कबूल ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! साहब हाल हजूर ।।

भजन ६५

जगत चल जाय यहाँ कोई न रहैया ।
चले गये कुम्भकरणअरु रावण । चले गये राम लखन चारो भैया ।।
चले गये नन्द जसोमति मैया । चले गये गोपीग्वाल कन्हैया ।।
उतपति परलय चारो जुग बीते । काल बली से कोई न बचैया ।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो । सत्यनाम एक होइहैं सहैया ।।
धोऊ धोउ रे धोबिया तन गुदड़ी ।
केथुकेर गुदड़ी केथुकेर पाट । गुदड़ी धोवाले कवने घाट ।।
तन केर गुदड़ी मन केर पाट । गुदड़ी धोवाले सतगुरु घाट ।।
कहैं कबीर धन गुदड़ी के भाग । मिलि गैले सतगुरु छुटिगैलो दाग ।।

भजन ६६

कोई पियत राम रस प्याला ।
जीभ कटोरी भरि भरि पीवै, झुकत फिरे मतवाला ।।
सत-मत अमल चढ़ाय गगन मन, निर्मल नित्य विशाला ।
रहै अदण्ड–दण्ड नहिं युग-युग, पार न पावै काला ।।
अनमिल रहै मिलै नहिं जग में, तिरछी उनकी चाला ।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो ! छांड़ि दियो भ्रमजाला ।

भजन ६७

सन्तन ज्ञान लहर धुनि माँड़ी ।
शब्द अतीत अनाहत राचे, या विधि तृष्णा खाड़ी ।।
खाड़ बुनै कोरी में बैठा, भव खुंटा दे गाड़ी ।
ताना-बाना परो उनासा, सूत कहै बुन गाड़ी ।।
बन के शशे समुन्दर कीन्हा, मच्छा चढ़ी पहाड़ी ।
शूद्र पिवै ब्राह्मण मतवाले, फल लागे बिनु डारी ।।
मूसा तपै बिलारी सेवै, स्यार सिंह को खाई ।
एक अचम्भा देखो भाई, जल में अग्नि रहाई ।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! अगम ज्ञान पद माँही ।
गुरु प्रताप सुई के नाके, हस्ती आवै जाई ।।

भजन ६८

मन ना रँगाये रंगाये योगी कपड़ा ।।
आसन मारि मन्दिर में बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा ।।
कनवा फराय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय योगी होयगै बकरा ।
जंगल जाय योगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी होयगै हिजरा ।।
मथवा मुड़ाय योगी कपड़ा रंगौले, गीता बाँचि के होयगै लबरा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! यम दरवजवा बांधल जैबे पकरा ।।

भजन–६९

पंडित कौन कुमति तोहि लागी ।
बूड़ोगे परिवार सहित सब राम न जपत अभागी ।।
जीव बधै तहँ धर्म क[१] थापै, अघरम कहु का भाई ।
जो तोहरा को ब्राह्मण कहिये, काको कहिय कसाई ।।
वेद पुराण पढ़े को का गुण[२], रख चन्दन जस भारा ।
राम नाम की गति[३] ना जानै, अन्त परे मुख छारा[४] ।।

---

(१) हिंसा को ही धर्म कहते हो । (२) फल । (३) आत्माराम के ज्ञान के बिना
(४) राख ।

मत के भेद आप ना बूझै, काह बुझावों भाई।
माया कारण विद्या बेच, जन्म अकारथ जाई॥
नारद बचन जु व्यास कहत हैं, शुकदेव बूझो भाई।
कहैं कबीर राम रस छूटो, ना तो बूड़ो भाई॥

भजन–७०

वह घर हमको कोइ न बतावे, जा घर से जिव आया हो॥
पानी पवन रहा जब नाहीं, नहिं काया नहिं माया हो।
चाँद सूर्य तारागण नाहीं, तब जिव कहाँ से आया हो॥
नागिनी एक नगर में पैठे, मूसे नव दरवाजा हो।
जो सोवै तिहि उड़ि उड़ि लागै, जो जागा सो भागा हो॥
उलटा बिम्ब सर्प मुख पैठा, धै छगरी बिध खाया हो।
झूरी नदी कटक सब बूड़े, लोग तमासे आया हो॥
शिर पर घड़ा, घड़ा पर सारंग, ता ऊपर मठ छाया हो।
कहहिं कबीर सुना भाइ साधो, यह पद विरला पाया हो॥

भजन ७१

मेरे नयना में राभ रंग छाय रहा हो।
जल बिच कमल कमल बिच कलियाँ,कलियाँमें भँवरा लुभाय रहा हो।
जल बिच सीप सीप बीच मोती, मोतिया में सुरति लुभाय रहा हो।
जल बिच बाग बाग बिच बँगला, बँगला में धुनियाँ रमाय रहा हो।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु के चरण लौ लाय रहा हो॥

भजन–७२

बोलो सन्तो अमृत बानी, बरषै कम्बल भीजै पानी॥
आग जलै चुल्हा गरमाये, पोने वाले को रोटी खाये।
शिथिल मुसाफिर थाके बाटा, सोने वाले के ऊपर खाटा॥
लूटै कुत्ता भूकै चौरा, मरे चमार घसीटै ढोरा।
कहैं कबीर यह अद्भूत बानी, माखिके पेट से हथिनी बियानी॥

अमृत = मोक्ष, विवेक विचार की वाणी। कम्बल = शरीराभिमान बरषे = रोग शोकादि। पानी = अज्ञानी जीव। भीजै=पीड़ित होता है। आग जलै = सकाम और निषिद्ध कर्म। चुल्हा=शरीर। पोने वाला = कर्ता-भोक्ता। रोटिया खाय = कर्मफल (सुख-दुख)। शिथिल व्यापारी = विवेकी जीव। थाके बाटा = मोक्ष की समीपता। सोने वाला = मोह निद्रा-ग्रस्त जीव। खाट = वासना। कुत्ता=कुवासनायुक्त। चोरा = मन द्वारा कामादि। चमार = देहाभिमानी जीव। ढोर = निर्दय काल (यमराज)। माखी=दुर्बुद्धि। हथिनी=माया।

हे सन्तों ! ऐसे मधुर वाणी द्वारा उपदेश दो कि कम्बल रूपी शरीर बरसे और दूसरे की बुद्धि रूपी पानी भींगे और शान्त शुद्ध हो जावे।

भजन ७३

बोलो साधो अमृत बानी। वरषै कम्बल भींजै पानी ॥
नौका डूबे शिल उतराय। मछरी धर के बगुलहिं खाय ॥
धरती बरषै सूर्य नहाय। ओरियक पानी बरेड़िया जाय ॥
तर भौ घड़ा उपर पनिहारि। लड़का गोद खेलै महतारि ॥
ठाढ़े डोम को फारै बांस। बकरा बेचत चिक के मांस ॥
मुसे कुकुर भूके चोर। चमरा को निकियाबै ढोर ॥
यह ब्राह्मण के उलटा ज्ञान। मूते इंद्रिय बाँधे कान ॥
चिल्ह के खोता टेंकरी बियानी। हुड़रा के घर वकरी रानी ॥
तावा ऊपर चुल्हा चढ़ाय। पकवनहार को रोटिया खाय ॥
चले बटोही थाके बाट। सोवनहारके ऊपर खाट ॥
या दुनियाँ की उलटी रीत। तर भइ छान ऊपर भइ भीत ॥
कहहिं कबीर सुनो नर लोई। यह पद बूझै बिरला कोई ॥

कम्बल=देह, हृदय कमल। पानी=जीवात्मा। बरसे=भक्ति की वर्षा। भीजै = तृप्त होना। नौका डूबे = देहाभिमान छूटे। सिला उतराय = सद्वृत्ति, सदाचार प्रगट हो जाय। मछली = सूरति ध्यान। बकुला = वकवृत्ति, कुप्रवृत्ति। खाय=समाप्त कर दे, नष्ट करे। धरती बरषे = निष्काम कर्म करे। सूर्य नहावे=

सुखी होवे। ओरियक=बाह्य वृत्ति। पानी=अन्तःकरण। बड़ेरिया=अन्तर्वृत्ति द्वारा उर्द्धमुख। घड़ा=शरीर। पनिहारी=सुरति, ध्यानमय वृत्ति। लड़का=मन। महतारी=माया। ठाढ़े डोम=मृत्यु। झरे बांस=विवेकी जीव जन्म मरण को नष्ट करे। बकरा=विवेकी जीव। चिक=कसाई काल। कुकुर=कुकर्म। मुसे=हटाना। भूके चोर कामादि मूलक ज्ञानेन्द्रिय रूप चोर की प्रवृत्ति पर विचारादि करता है। चमरा=देहाभिमानी। ढोर=त्यागकर। निकियावे=सही ढंग से समझाना। मूते इन्द्रिय=अविहित भोग में प्रवृत्ति। बांधेकान=वेदादि का श्रवन। चिल्ह=काल। खोता=देह। टेंगरी=दुर्बुद्धि। बियानी=कामादि उत्पन्न होना। हुंडार=अधर्म में प्रवृत्ति। बकरी रानी=देहाभिमानी। तावा=ताप जनक कर्म। चूल्हा=देह-बुद्धि। सोवनहार=अज्ञानी। रोटिया खाय=कर्म ही कर्त्ता को नष्ट करता है। बटोही=कर्म मार्गी। थाके बाट=मार्ग में ही थकता है। सोवनहार=मोहनिद्रा। ऊपर खाट=जन्म मरण। छान=सदुपदेश। तर=नीचे। भीत=अधर्म, अज्ञानादि से भय। नरलोई=मनुष्य लोगों।

भजन ७४

कोइ देखो लोगो नइया में नदिया डूबी जाय।।
चींटी चले अपने नैहर, नव मन काजर लाय।
ऊँट मारि बगल में लीन्ही, हाथं लिया लटकाय।।

एक अचम्भा ऐसा देखा, बन्दर दूहै गाय।
दूध दूहि के अपने पीवे, घीव बनारस जाय।।
एक अचरज मैं ऐसा देखा, गदहा के दो सींग।
चींटी के पग रस्सा लागत, खींचत अर्जून भीम।।

एक चींटी के मूते से, बहिया नदी औ नार।
पापी नइया पार उतर गए, धर्मी बूड़े मँझधार।।

एक चींटी के मृत्यु भये से, लाखों गीध अघाय।
वाहू में कछु बांकी रहिगौ, तापर चिल्ह मड़राय।।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निर्वान ।
जो यह पद को अर्थ लगावै, है वैकुण्ठ निशान ॥

नइया=सदुपदेश । नदिया = जन्मादि रूप संसार नदी । चींटी=अज्ञानी का मन । नैहर=संसार । नवमन = नौ इन्द्रियों द्वारा । काजल=दुष्कर्म जन्य पाप । ऊँट = उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ । बगल में=वश में । हाथी=कर्मेन्द्रियाँ । लटकाय= उसके वश हो गया । बन्दर=मन के वशीभूत जीव । गाय=मायिक पदार्थ । दूहे=वश में करने की इच्छा । दूध = विषय, सुख । घीव = वासना । बनारस= संस्कारयुक्त लोक परलोक (मोक्ष में प्रतिबन्धक) । गदहा = कुवासनायुक्त मन । दो सींग = राग-द्वेष । चींटी=सूक्ष्म मन । पग = कामादिवृत्ति । रस्सा=कर्मादि । अर्जुन भीम = कर्मठ व्यक्ति । एक चींटी = सद्गुरु के उपदेश प्राप्त युक्त मन । मूते = विषयवासना के त्यागने से । नदी और नार = ज्ञान भक्ति शान्ति रूपी नदी नाला । पापी नइया = अज्ञानी जीव का शरीर (शरीराध्यास) । पार = अलग रहता । धर्मी=सत्संगी जीव । धार = उसी में गोता लगाता है (पवित्र बनता है) । चींटी = योगी का मन । मृत्यु = जीवन्मुक्ति । गीध = सांसारिक जीव । अघाय = तृप्त होता है । चिल्ह=जिज्ञासु जीव (भक्तगण) । मड़राय= सत्संग करते हैं ।

भजन ७५

ठगनी क्या नैना झमकावै । तेरे हाथ कबीर न आवै ॥
कद्दू काटि मृदंग बनाया, निम्बू काटि मंजीरा ।
पाँच तरोइया मंगल गावै, नाचै बालम खीरा ॥
रूपा पहिरि के रूप दिखावै, सोना पहिरि रिझावै ।
फले डालि तुलसी के माला, तीन लोक भरमावै ॥
भैंस पद्मिनी चूहा आशिक, मेढ़क ताल लगावै ।
छप्पर चढि के गदहा नाचै, ऊँट विष्णु पद पावै ॥

आम डारि चढ़ि कछुवा तोरै, गिलहिरी चुनि चुनि लावै।
कहैं कबीर सुनोभाइ साधो, बगुला भोग लगावै ॥

ठगनी = माया। झमकावै = चंचलता करती है (कटाक्ष)। कबीर=ज्ञानी (मन को मारकर वश किया व्यक्ति)। तेरे हाथ=वश। कद्दू = अज्ञानी के भोग पदार्थ। मृदंग=सुखाभास। निम्बू = ब्रह्मा के शरीर सृष्टि काल में दो होकर स्त्री, पुरुष किया। मंजीरा=मन को रमाने वाला। पाँच तरोई = ज्ञानेन्द्रिय। बालम खीरा = देवादि। रूपा = सुकर्म। रूप = सुन्दरता (तज्जन्य फल सुखादि) सोना=उपासना, भक्ति। रिझावै = सांसारिक लोगों को प्रसन्न कराती है। देवादि को प्रसन्न कराती है। भैंस = तामसी माया। पद्मिनि = सुखद (सिद्धि युक्त)। चूहा = संग्रही जीव। आशिक = मुग्ध। मेढ़क = वासनायुक्त चंचल चित्त। ताल बजावे = वाहवाही करता है। छप्पर=देहाभिमान में, लोकान्तर की आशा ऊँट = ऊँची दृष्टि। विष्णु पद = मोक्ष। आमवृक्ष = सत्शास्त्र। डारी=आशा। कछुआ तौरे = विषय को त्यागकर। गिलहरी = निराभिमानीभक्त। बकुला वक वृत्ति वाला ढोंगीं योगी विरला ही इस अर्थ को लगाता हैं।

भजन ७६

करिले यतन सखी साईं मिलन की।
गुरिया गुरवा सूप सुपलिया, तजि दे बुध लड़िकइयाँ खेलन की ॥
देव पितर औ भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की।
ऊँचा महल अजब रंग बँगला, साईं की सेज वहाँ लगी फूलन की ॥
तन मन धन सब निछावर करिहो, सुरत सँभार पर पईयाँ सजन की।
कहैं कबीर निर्भय होय हँसा, कुँजी बता दियो ताला खुलन की ॥

सन्मार्ग में लगा जीव अज्ञानी जीव को सम्बोधन कर कहता है कि सांसारिक चक्कर छोड़ कर परमात्मा रूपी पति से मिलने का प्रयत्न करो। जब तक सच्चे पति से सम्पर्क नहीं होता तभी तक लड़कियां कपड़े और

कागज के बने खिलौनों का ब्याह आदि खेल खेलती हैं। इसी तरह देवी देवता की पूजा है, जो मनुष्य को चौरासी लाख योनी में भटकाती है।

भजन ७७

अनगढ़िया[1] भटकती देवा कौन करै तेरी सेवा ।।
गढे[2] देव को सब कोइ पूजे, नित ही लावै सेवा।
पूरण ब्रह्म अखण्डित[3] स्वामी, ताका जान न भेवा ।।
दश अवतार निरञ्जन कहिये, सो अपना नहिं होई।
ये तो अपनी करनी भोगै, कर्ता ओरहि कोई ।।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर कहिये, इन शिर लागी काई।
इन भरोसे मत कोइ रहना, इनहू मुक्ति न पाई ।।
योगी यती तपी संन्यासी, आप आप में लड़िया[4]।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, शब्द लखे सो तरिया ।।

भजन ७८

जग में या विधि साधु कहावै।
दया स्वरूप सकल जीवन पर, और दृष्टि नहिं आवै ।।
झलकत दशा ब्रह्म की जागे, सब ही के मन भावै।
शीतल वचन सर्व सुखदायी, आनन्द प्रेम बढ़ावै ।।
जाको निशिदिन प्रेम भक्ति है, दूजा देव न ध्यावै।
कहैं कबीर हम वा घट परगट आप अपन पौ पावै ।।

भजन ७९

ऐसो ज्ञान विचारो अवधू, ऐसो ज्ञान विचारो ।।
पहिले मेरी माता मर गई, पीछे जनम हमारी।

---

(१) जिसका रूप रंग नहीं है ऐसे शुद्ध चेतन मूर्त अमूर्त से रहित देव की कौन सेवा करता है?
(२) अपने हाथ से बनायी या बनवायी मूर्ति आदि को।
(३) शुद्ध आत्म तत्त्व को। (४) लड़ाई करते हैं।

अस्सी बरस के श्वशुर हमारे, श्वशुरा में सासु कुमारी ।।
बाबा हमारो व्याहन चलले, हम बारयतियक साथी ।
पिया हमार पलँग चढ़ि झूलै, हमहुँ झुलब संग साथो ।।
हम भी साधू तुम भी साधू, साधु साधु का मेला ।
बिना छाल के पेड़ बतावै, सोइ गुरु हम चेला ।।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्वाणा ।
जो यह पद को अर्थ लगावै, सोई सन्त सुजाना ।।

अवधू=न बधू, विषयादि से विरक्त। माता=माया ममता। जन्म हमारी=मानवता, ज्ञान, । श्वशुर=ज्ञानी सद्‌गुरु। अस्सी वर्ष पञ्चम भूमिका। श्वशुरा=आध्यात्मिक क्षेत्र। सासु=सत्‌शिक्षा। कुमारी=असंग (विद्या)। बाबा=सदुपदेशक। हम=जीवात्मा। बरियतियक=इन्द्रियादि। पिया=परमात्मा। पलङ्ग=हृदय में। झूलै=अनेक अवस्था। साधु=शुद्धवृत्ति। बिना छाल=आवरण रहित। पेड़=ब्रह्मात्मा का स्वरूप। पद=स्थान (स्थिति)। निर्वाना=बन्धरहित।

भजन ८०

जियत न मार मुवा मत लैयो, माँस बिना मत ऐयो रे।
परली पार इक बेल का बिरवा, वाके पात नहीं है रे।।
होत पात चुग जात मिरगवा, मृग को शीश नहीं है रे।
धनुष बाण ले चढ़ा पारधी. धनुष में पनच नहीं है रे।
सर सर बाण तकातक मारे, मृग को घाव नहीं है रे।
उर बिनु खुर बिनु चरण चोंच बिनु, उड़न पंख नहिं जाके रे।
जो कोइ हंसा मारि ले आवे, रक्त माँस नहिं ताके रे।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद अतिहि दुहेला रे।
जो यह पद का अर्थ बतावै, सोइ गुरु हम चेला रे।।

जीयत=जीवमात्र(अहिंसा पालन करो, वक वृत्ति न करो)। मुवा=जड़ता, आसक्ति। माँस बिना=आत्मज्ञान, मोक्ष। परली पार=संसार देहादि से परे। बेल=सर्वसाक्षी (ईश्वर)। पात=कार्य, कर्तादि। होतपात=मायाजन्य

पत्ररूपी कार्य दिखते हैं। मिरगवा=मन। शीस=आत्मज्ञान रूपी शिर। पारधी= उपदेशक। धनुष=योगशास्त्रादि। पनच=ताँत रूपी तत्त्वज्ञान। तकातक= देख देखकर। घाव=शब्द द्वारा ज्ञान। उर=हृदय=। खुर=वृत्ति। चरण चोंच=सदाचार सद्वृत्ति : उड़न पंख=साधन। हँसा=आत्मविवेकी। मारि= मन को वशीभूत। रक्तमांस=अभिमानादि। दुहेला=कठिन। यह पद= विजय स्थान।

भजन ८१

करम गति टारेहुँ नाहिं टरी ।।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी, शोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ को, बनहुँ में विपति परी ।।
कँह वह फँन्द कहाँ वह पारधि कँह वह मिरग चरी।
सीता को हरि लियो रावणा, सुवरण लंक जरी ।।
नींच हाथ हरिश्चन्द बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुण्य करत नृग, गिरगिट योनि परी ।।
पाण्डव जिनके आपु सारथी, तिन पर विपति परी।
दुर्योधन को गर्व मिटायो, यदुकुल नाश करी ।।
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, होनी होके रही।

भजन ८२

एक अचम्भा देखा रे भाई। ठाढ़ा सिंह चरावै गाई ।।
पहले पूत पीछै भइ माई। चेला के गुरु लागै पाईं ।।
जल की मछली तरुवर व्याई। पकरी बिलाई मुरगै खाई ।।
बैलहिं डारि गून घर आयी। कुत्ता को लै गई बिलाई।
तल करि शाख ऊपर करि मूला। बहुत भाँति जड़ लागे फूला ।।
कहैं कबीर या पद को बूझै। ताको तीनू त्रिभुवन सूझै ।।

ठाढ़ा=सबके सिर पर स्थिर। सिंह=काल। गाई=गायरूपमन। चरावै= विषयरूप तृण। पहिलेपूत=मन आगे ही भोग काल में दौड़ता। माई=

माया शरीर के पीछे रहती है। चेला = जीव। गुरू = ईश्वर। पाईं = पाद (भाग, अवस्था)। निष्काम सत्कर्म जन्य, जल = सांसारिक विषय रूपी मछली = सुरति। तरुवर = ब्रह्मात्मा। व्याई = अनुभूति तृप्ति पाई। मुरगै = मन रूप मुरगी। विलाई = ममतादि। खाई = नष्ट कर दिया। वैलहि = जड़ता, आलस्य। डार = त्याग। गून = इन्द्रिय रूप गुण विषय। घर = देह। कुत्ता = कुवासना। विलाई = विलय कर दिया। तर = नीचे। शाख=भौतिक पदार्थ। मूला = सत्यात्मा। जड़ = मूल में। फूला - नाना प्रकार का विषय सुख। तीनू = जीव, ईश्वर, ब्रह्म।

भजम ८३

वर्षो जी बाबा वर्षो जी बाबा, वर्षों पुरुष पुराण हे।
आवे न जाय मरे नहिं कबहीं सोई हैं कन्त हमार हे॥
प्रथमे मास मोहि मिलल बाबा, तब हम रहली कुमार हे।
मिलल्न भाइ भतारक जन्मल, उनसे भैल विवाह हे॥
घर ही में रसली घर ही बसली घरहि कैली घरुवार हे।
नागिन रूप ह्वै पैठलि सहर में, डँसली चारो वेद हे॥
एक न डँसली सतगुरु साहब, जिनका नाम आधार हे।
साजि बरियतिया दुवार जब लागी, अगुवाके वथल कपार हे।
फार धिकाय सासु परिछन चलली, दागली भौंह लिलार हे।
माँड़ो छवाइल आग लगाइल, कोहबर फेकरे सियार हे॥
सब बरियतिया के तिजरा आइल, अगुवा के कैल सराध हे।
उठ धिया राँड़ी झमक चढ़ डाड़ी जइते खइहो भतार हे॥
बाबा के मरले न्योत पठाइब, अइह तूँ भाइक श्राद्ध हे।
बाबा घर तजली ससुर घर चलली, बाबा घर अगिया लगाय हे।
ससुर भसुर संग एक सेज सुतली, अचरज कहलो न जाय हे॥
अगुवा के मुख चन्दन लागे, जिन बर खोजल हमार हे।
जो यह पद को बूझे समुझे, सोइ पुरुष निरबान हे॥
दास कबीर यह मंगल गावे, सन्तन लेहु विचार हे।
भइल विवाह परम पद पाइल, जन्म जन्म यहिबात हे॥

भजन ८४

गगन घटा घहरानी साधो ! गगन घटा घहरानी ।।
पूरब दिशि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी ।
आपन आपन मेड़ि सम्हारो, बह्या जात यह पानी ।।
दुविधा दूब छोलकर बाहर, बोयो नाम की धानी ।।
योग युक्ति करि करु रखवारी, चर न जाय मृग पानी ।
वाली झार कूटी घर लावै, सोई कुशल किसानी ।।
पाँच सखी मिलि कीन्ह रसोइया, एक से एक सयानी ।
दोनों थार बराबर परसैं जेवैं मुनि अरु ज्ञानी ।।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्वानी ।
जो यह पद को परिचय पावै, ताको नाम विज्ञानी ।।

भजन ८५

फल मीठा पै ऊँचा तरुवर, कौन करि लीजै ।
नेक निचोहू सुधारस वाको, कौन युक्ति से पीजै ।।
पेड़ बिकट है महासिलहिला, अगह गहा नहिं जावे ।
तन मन डारि चढै सरधा सो, तब वा फल पावै ।।
बहुतक लोग चढ़े बिनु भेदे, देखी देखा याहीं ।
रपटि पाँव गिरि परे अधर से, आइ परे भुइँ माहीं ।।
सत्य शब्द के खूँटे धरि पग, गहि गुरु ज्ञानहि डोरा ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, तब वा फल को तोरा ।।

भजन ८६

क्या सोया उठ जाग रे काया गढ के मवासी ।
सोवन के दिन बहुत पड़े हैं, जागन के दिन आज रे ।।
तस्कर के डर बहुत बड़ो हैं, अपने पहरे जाग रे ।
काम क्रोध की फौज सजी है, ज्ञान बन्दूके दाग रे ।।

सत कर टोप दया कर बखतर, शील खडग ले हाथ रे ।
ऐसी जागन जो कोइ जागे, क्या गिरही वैराग रे ॥
जागे ध्रुव प्रहलाद विभिषण, पाय अटल पद राज रे ।
कहैं कबीर जागे जो चाहे प्रभु से लेत सोहाग रे ।

भजन ८७

सन्तो सहज समाधि भली है ।
गुरु प्रताप भई जा दिन ते, सुरति न अनत चली है ॥
जहँ जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कछु करूँ सो पूजा ।
गृह वन खण्ड एक करि जानो, भाव मिटावों दूजा ॥
आँख न मूँदूँ कान न रूधूँ, काया कष्ट न धारूँ ।
खुले नैन हँसी पहिचानूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ॥
शब्द निरन्तर मनुआँ राते, मलिन वासना त्यागे ।
ऊठत बैठत कबहुँ न विसरै, ऐसी तारी लागै ॥
कहैं कबीर यह उनमुनि रहनि, सो प्रगट करि गाई ।
सुख दुख मे इक परे परमपद, सो पद है सुखदाई ॥

"हिन्दीकविकबीरसिद्धान्तस्याद्वैतवेदान्तेन सह साम्यम्" शोध ग्रन्थ में प्रयुक्त भजनांश जो "शब्दामृत सिन्धु" से उद्‌धृत हैं, वे भजन पूर्णरूपेण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जो भजन-प्रेमियों के साथ-साथ उक्त ग्रन्थ अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

भजन १

पण्डित सत पद जपु हो भाई, जासो काल अवधि मिटि जाई ॥
शूद्र शरीर ब्रह्म तब भीतर, भिन्न भाव कछु नाहीं ।
लक्ष चौरासी जीव योनि में, बरत रहो सब माहीं ॥
ज्ञान न उपजे आप न चीन्हें, आपु कहाँ ते आई ।
एक योनि से चार वरण हैं, ब्रह्म देह कहँ पाई ॥
नवो सूत संयुक्त विचारो, तिन गुण गाठ दिढाई ।
ताग जनेउ टूटै नहि कबहूँ, दिन दिन ज्ञान बढ़ाई ॥
बारह वेदी ब्रह्म विचारो, सोरह सत्य समाई ।
सन्ध्या तर्पण तहवाँ कीजै, पानी कुशा न पाई ॥
कहहिं कबीर गुरु ब्रह्म हि चीन्हो, जाग्रत जानै सोई ।
पाखण्ड की गति इहई मेटो, तब निज ब्राह्मण होई ॥

भजन २

प्रभु तो भक्ति के बश भाई ।
जाति बरण कुल रीझत नाहीं, ना रीझै चतुराई ॥
करमा कौन आचार कियो है, कब काशी करि आई ।
छप्पन भोजन पीछे लागे, पहिले खिचड़ी पाई ॥
सेवरी जाति कौन कुल कहिये, जूठ बेर ले आई ।
प्रीति जानि ताके फल खाये, तीनों लोक बड़ाई ॥
व्याधा कब आचार कियो है, कब गीता पढ़ भाई ।
तुरत गोपाल पकरि ले आया, घढ़ी न दूसर बिताई ॥
तिरलोचन नामदेव पीपा, हरि सो हेत लगाई ।
सैनरूप ह्वै दर्दन कीन्हा, आप भये हरि नाई ॥
सहस अठासि मुनि यज्ञ में जेमें, तबहु न घंटा वाजै ।
कहैं कबीर सुपच के जेमें, घण्ट मगन ह्वै गाजे ॥

भजन ३

अचरज एक सुनो रे भाई। निर्गुण ब्रह्म सगुण ह्वै आई ।।
आदि सनातन हरि अविनाशी। सदा निरन्तर घट घट वासी ।।
पूरण ब्रह्म पुराण बखानै। चतुरानन शिव अन्त न जानै ।।
गुण गहि अगम निगम जेहि गावै। सोइ यशोदा गोद खेलावै ।।
एक निरन्तर ध्यावै ज्ञानी। पुरुष पुरातन है निरबानी ।।
शुक नारद करही विचारा। सो नारद नहिं पावहि पारा ।।
जप तप संयम ध्यान न आवै। सोइ नन्द के आगन धावै ।।
जरा मरण से रहित अमाया। मातु पिता सुन बन्धु न जाया ।।
उतपति ब्रह्म सदा सुखदाई। परमानन्द है सन्त सहाई ।।
ज्ञान रूप हृदया मँह बोलै। सो बछरुन के पीछे डोलै ।।
पूरो भाग सकल वृजवासी। जाके संग खेलै अबिनाशी ।।
जो रस ब्रह्मा पार न पावै। सो रस गोपीन नीर बहावै ।।
दास कबीर गुण कहैं बखानी। गोविन्द को गति गोविन्द जानी ।।

भजन ४

राम तेरो नाम बिना दुख भारी। ताते सन्तन यही बिचारी ।।
एक वेद किताबे राते। एक माया के मद माते ।।
एक देश देश देशान्तर डोलै। एक बहुत ज्ञानि ह्वै बोलै ।।
एक नागा दूधाहारी। तहँ मोहिं अचम्भा भारी ।।
एक मौनी औ विश्वासी। ताते कटी नहीं यम फाँसी ।।
एक काया बसत अपार। एक मरत खडग की धार ।
एक किये गुफा में बासा। जनु बहु जीवन की आशा ।।
कोई आदि युगादि जागे। जिहि जरा मरण भ्रम भागे ।
यह कहैं कबीर बिचारी। भवसागर उतरो पारी ।

भजन ५

कित जाइये घर लाग्यो रंग। चित्त न चलै मन भयउ पंगु ।।
एक दिवस मन उठि उमंग। घसि चोवा चण्दन सुगन्ध ।।

पूजन चली ब्रह्म की ठाईं । ब्रह्म बतायो गुरु मनहि माहिं ॥
जहँ जाइय तँह जल पषाण । तू पूरि रह्यो है सब समान ॥
वेद पुराण सब देखे जोई । वहाँ जाइय जहँ तू न होइ ॥
सतगुरु मैं बलिहारी तोर । सकल विकट भ्रम काटे मोर ॥
रामानन्द स्वामी रमत बह्म । गुरु शब्द काटै कोटि कर्म ॥

भजन ६

नाम भजा सोइ जीता जग में, नाम भजा सोइ जीता ।
हाथ सुमिरनी पेट कतरनी, पढ़े भागवत गीता ॥
हृदया शुद्ध किया नहिं बौरे, कहत सुनत दिन बीता ।
आन देव की पूजा कीन्हीं, गुरु से रहा अतीता ॥
धन योवन तो यहाँ रहेगा, अन्त समय चल रीता ।
बावरिया ने बावर डारी, फन्द जाल सब कीता ॥
कहैं कबीर काल आ खैहैं, जैसे मृग को चीता ॥

भजन ७

सन्तो बीजक मत परमाना ।
कैयक खोजी खोज थके, कोइ विरला जन पहिचाना ॥
चारिउ युग औ निगम चार औ, गावै ग्रन्थ अपारा ।
विष्णु विरञ्चि रुद्र ऋषि गावैं शेष न पावैं पारा ॥
कोइ निर्गुण सरगुण ठहरावैं, कोई ज्योति बतावै ।
नाम धनी को सब ठहरावै, रूप को नहीं लखावै ॥
कोइ सूक्ष्म स्थूल बतावै, कोइ अक्षर निज साँचा ।
सतगुरु कहँ बिरले पहिचाने, भूले फिरे असाँचा ॥

लोभ की भक्ति सरै नहिं कामा, साहब परम सयाना।
अगम अगोचर धाम धनी का, सबै कहैं ह्वाँ जाना॥
दिखे न पन्थ मिले नहीं पन्थी, ढूँढ़त ठौर ठिकाना।
कोइ ठहरावै शून्यक कीन्हा, ज्योति एक परमाना॥
कोउ कह रूप रेख नहिं वाके, धरत कौन को ध्याना।
रोम रोम में परकट करता, काहे भरम भुलाना॥
पक्ष अपक्ष सब पचिहारे, कर्त्ता कोइ न विचारा।
कौन रूप है साँचा साहब, नाहिं कोई विस्तारा॥
बहु परिचय परतीति दिढावै, साचे को विसरावै।
कलपत कल्पकोटि युग बागै, दरशन कतहु न पावै॥
परम दयालु परम पुरुषोत्तम, ताहि चीन्ह नर कोई।
तत पर हाल निहाल करत है, रीझत है निज सोई॥
बधिक कर्म करि भक्ति दिढावै, नाना मत के ज्ञानी।
बीजक मत कोइ विरला जानै भुले फिरे अभिमानी॥
कहहिं कबीर कर्त्ता में सब है, कर्ता सकल समाना।
भेद बिना सब भरम परे हैं, बूझत सन्त सुजाना॥

भजन ८

थोरे जीवन के कारणे मन, क्यों लगी है मसती।
दौलत तेरी धरी रहेगी, द्वारे बाँधा हसती॥
बालपना गौ यौवन जावे, साहब सुमरत सुसती।
काल गरास करै नित ही नित, छोड़ चलैगा बसती॥
निर्मल सौदा कर लै प्राणी, जब लग रे वे बसती।
गाफिल होय भला नहिं तेरा, पल पल जावै खँसती॥

सतगुरु शब्द विचारो अन्तर, छाड़ो कुलकर कसती।
आतम राम सकल में देखो, व्याप रह्यो है समती॥
तेरा साहब है तुझ माहीं, अन्तर देखो असती।
बाहर दृष्टि देखो नाहीं, कहैं कबिर कर गसती॥

भजन ९

हंसा त्रिगुण कर्म की मोट।
राजस तामस और सतोगुण, विषम काल की चोट॥
द्वादश बान बँध्यो तीनों को, कोइ बड़े कोइ छोट।
चित बुधि अहं मोह मद माया, मार चराचर छोट॥
राग द्वेष भौ बान काम के, आहि रैन दिन ओट।
जरा मरण माहुर बन्धायो, मरे विषन की चोट॥
एकै दृष्टि बान संधानै, चक्र देव गण कोट।
जप तप कोट साधना पूजा, चढ़ै मास मद रोट॥
नाना अमल माँत जिव माँते, ज्ञान हीन तन खोट।
कहैं कबिर बिनु सतगुरु सेवा, कर्मन बाँधल पोट॥

भजन १०

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हमको मिला जियावन हारा॥
अब न मरूँ मरने मन माना, मरे सोइ जो नाम न जाना।
साँकट मरै सन्त जन जीवैं, भरि भरि नाम रसायन पीवैं॥
हरी मरैं तो हमहूँ मरि हैं, हरि न मरैं हम काहे मरि हैं।
कहहिं कबिर मन मनही मिलावा, अमरभयेसुखसागर पावा॥

भजन ११

जिन पिया प्रेम रस प्याला, सो जन है मतवाला ।।
मूल चक्र को बन्द लगावै, उलटी पवन चढ़ावै ।
जरा मरण भय व्यापै नाही, सतगुरु शरणे आवै ।।
बिनु धरती हरि मन्दिर देखै, बिनु सागर झर पानी ।
बिनु दीपक देवल उजियारा, बोलै गुरुमुख बानी ।।
इँगला पिंगला सुषमणनाड़ी, उन्मुनि के घर मेला ।
अष्ट कमल पर कमल बिराजै, सो साहिब अलबेला ।।
चन्द सूर्य दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत को लावै ।
अमृत पिवै मगन ह्वै बैठे, अनहद नाद बजावै ।।
चान्द सूर्य एके घर राखै, भूला मन समझावै ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो ! सहज सहज गुण गावै ।।

भजन १२

एक बिनु दूसरा दृष्टि आवै नहीं, एक बिनु कहो तुम कौन दूजा ।
एक बिनु दूसरी सेव कहो कौन की, एक बिनु दूसरी कौन पूजा ।।
पाँच अरु तीन का सकल मंडान है, एक परकाश ब्रह्माण्ड कीया ।
कहैं कब्बीर कहिं द्वैत दीसै नहीं, एक अद्वैत गुरु ज्ञान दीया ।।

भजन १३

साईं तेरे नाम बिना न उबारा ।
काम क्रोध औ लोभ मोह सँग, ये चारो बटमारा ।
इनके बश सब जीव भुलाने, कैसे उतरे पारा ।।
आशा तृष्णा मनसा डाकिन, खाये सब संसारा ।
कनक कामिनी के वश परिया, क्या कर जीव विचारा ।।

साधु संग में परम अनन्दा, सहजे उतरे पारा।
सतगुरु खोज सन्त से बूझो, कहैं कबीर बिचारा॥

भजन १४

भजन कर जग में जीवन सार॥
नर देही का गर्व न कीजै, जर बर होती छिन में छार।
पाँचों मार पचीसो वश कर, यमराजा की चोट सँभार॥
नदिया गहिरी नाव पुरानी, बिनु सतगुरु कस उतरे पार।
कहैं कबीर सतगुरु को भजनकर, भवसागर से उतरो पार॥

भजन १५

रे मन राम सुमिर पछतावेगा॥

लालच लागी जन्म गमाये, माया भरम भुलावेगा।
आई के यम अंग जब पकड़े, ता दिन कछु न बसावेगा॥
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हा, यम का सोटा खावेगा।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, साधु संग तरि जावेगा॥

भजन १६

साँचा प्यारा है साईं को, साँचा प्यारा है।
सत्य शब्द चीन्हें बिना, किमि होय उबारा हैं॥
साँचे के मैं संग रहूँ, सांचे का प्यारा हो।
झूठे से दिल भागिया, झूठे से न्यारा हो॥
काम क्रोध के संग रहै, दुर्मति नहिं डारा हो।
कपट कतरनी पेट में, क्यों होय उबारा हो॥
सांचे मारग चालते, कहहू किन मारा हो।
झूठे मारग चालता, जन्मो सब हारा हो॥

कहँ नारी कहँ पुरुष है, कहँ बूढ़ा बारा हो ।
कपट रूप की भक्ति से, भरमत संसारा हो ।।
अनहद बाजा बाजिया, बरषत घन धारा हो ।
तहाँ शब्द घन घोर है, जिहि वार न पारा हो ।।
झूठे मारग त्यागि के, गहु शब्द हमारा हो ।
ता कहँ लोक पठाइ हो. मेटो भ्रम सारा हो ।।
क्षमा शील सन्तोष ते, लह गुरु दरबारा हो ।
कहैं कबीर विचारि के, त्यों हंस उबारा हो ।।

भजन १७

भरम में भूल रहा संसार ।
बीज वस्तु कैसे के पावै, जाका सकल पसार ।।
किरतम नाम जान बहुथापे, करता रहा निहार ।
एक दृष्टि चितवत नहिं तन में, को है सिरजनहार ।।
वेद पढ़ै पै भेद न जानै, कथनी कथै अपार ।
आप न बूझै जगत बुझावै, सूझे वार न पार ।।
कहैं कबीर वा घट परगट है, जो कोइ बूझनहार ।।

भजन १८

सब का साक्षी मेरा साईं ।
ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लो, और अव्याकृत नाहीं ।।
पाँच पचीस से सुमति करिले, यह सब जग भरमाया ।
अकार उकार मकार मात्रा, इनसे परे बताया ।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती तुरिया, इनते न्यारा होई ।
राजस तामस सात्विक निर्गुण, इनके आगे सोई ।।

सूक्ष्म स्थूल कारण मह कारण, इन मिलि भोग बखाना।
विश्व तैजस प्राज्ञ आतमा, इनमें सार न जाना।।
परा पश्यन्ति मध्यमा बैखरी, चार वानि ना मानी।
पंच कोश नीचे कर देखो, इनमें सार न जानी।।
पाँच ज्ञान औ पाँच कर्म है, यह दश इन्द्रिय जानी।
चित सोइ अन्तःकरण बखानी, इन में सार न मानी।।
कूर्म नाग किरकला धनञ्जय, देवदत्त कहँ देखो।
चौदह इन्द्रिय चौदह देवा, इनमें अलख न पेखो।।
तत्पद त्वंपद और असी पद, बाचा लक्ष्य पिछानै।
जहत लक्षणा अजहत कहते, अजहत जहत बखानै।।
सतगुरु मिलै सतशब्द लखावै, सारशब्द बिलगावै।
कहैं कबीर सोई जन पूरा, जो न्यारा कर गावै।।

भजन १९

पूछै कोई सन्त सुजान अँदेशा।
सतगुरु दिया उपदेश सबन को, चलो आपने देशा।।
अगम संदेश अगोचर महिमा, नहिं जहँ रूप निसानी।
जीव न ब्रह्म सुरति नहिं मन गति, ऐसा पद निर्वानी।।
या नगरी कोइ रहन न पावै, भय चिन्ता दुख खानी।
सुन्दर रूप देखि मति भूलो, छन में जात बिलानी।।
अब इक शब्द हमारा सुनिये, निरखि परखि दिल लीजै।।
शून्यक मिले शून्य ह्वै जैहो, अजर अमर तहँ जीजै।।
जो कछु तुम तुम बिनु कछु नाहीं, सब जिव जमा सम्हारो।
कहैं कबीर एक हम तुम ही, घट घट रूप निहारो।।

भजन २०

हमारे मन कब भजिहो गुरु नाम ।।

बालापन जनमत ही खोयो, ज्वानी में व्यापा काम ।
वृद्ध भये तन काँपन लागे, लटकन लागे चाम ।।
कानन बहिर नैन नहिं सूझै, भये दाँत बेकाम ।
घर की तिया विमुख ह्वै बैठी, पुत्र कियो कलकान ।।
खटिया से भूइयाँ धर दीन्हे, यम का गड़ा निशान ।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो ! दुविधा में गौ प्राण ।।

भजन २१

चेत सबेरा चलना बाट । यह जग देखा झूठा ठाट ।।
चलने की तजबीज न कीन्हा, मंजील को खरची न लीन्हा ।
अच्छी राह ताहि ना चीन्हा, अब का सोता माकुल खाट ।।
चञ्चल मन का घोड़ा कीन्हा, ज्ञान लगाम ताहिं दे दीन्हा ।
हो होशियार बेगि गहि लीन्हा, भव सागर के चौड़ा पाट ।।
मित्र कुटुम्ब कोइ नहिं तेरा, यह सब ही स्वारथ के बेरा ।
यहाँ नहीं तोर निश्चय डेरा इनसे चलना बेग उचाट ।।
मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर को बिलमाया ।
विष के लडुआ आन खिलाया, लूट लिया मारग पर हाट ।।
तन सराय में मन अरुझाना, भठियारी के रूप लुभाना ।
निशदिन वा से बच के रहना, सौदा कर सद्गुरु के हाट ।।
जलदी चेतो साहब सुमिरो, दशो द्वार यम घेर लियो है ।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, अब का सोवो बिछाये खाट ।।

भजन २२

पानी बिच बतासा सन्तो, तन का यही तमासा है ॥
क्या ले आया क्या ले जायगा, क्या बैठा पछताता है ।
मूठी बाधे आया बन्दे, हाथ पसारे जाता है ॥
किसकी नारी कौन पुरुष है, किससे नाता लगाता है ।
बड़े बिहाल खबर ना तन की,बिरही लहर बुझाता है ॥
इक दिन जीना दो दिन जीना, जीना बरस पचासा है ।
अन्तकाल बीसा सौ जीना, फिर मरने की आशा है ॥
ज्यों ज्यों पाँव धरो धरनी में, त्यों त्यों यम नियराता है ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो !, गाफिल गोता खाता है ॥

भजन २३

सुकिरत कर ले नाम सुमिर ले, को जानै कल की,
जगत में खबर नहीं पलकी ॥
झूठ कपट करि माया जोरिन, बात करै छल की ।
पाप की पोट धरै शिर ऊपर, किस विधि ह्वै हलकी ॥
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्टी की ।
श्वास श्वास में नाम सुमिर ले, अवधि घटै तन की ॥
काया अन्दर हंसा बोलै, सुखिया कर दिलकी ।
जब यह हंसा निकसि जाहिगें, मट्टी जंगल की ॥
काम क्रोध मद लोभ निवारो, यही बात असल की ।
ज्ञान विराग दया दिल राखो, कहैं कबिर दिल की ॥

भजन २४

छके निज नाम में प्रेम प्याला पिया, मुक्ति मैदान में दिया डेरा ।
शब्द के पारखी सन्त सुमिरन करै, धारण आकाश बिच एक धारा ॥

पवन के गाँठ ले मेरु ठाढ़े किया खंड ब्रह्माण्ड तूँ देख सारा।
आब में आब मिल पवन में पवन मिले, तेज में तेज और भूमि छारा॥
स्वर्ग औ नरक संसार की भरमना, मोहि बतलाय दे कौन मूवा।
कहैं कबीर यह नीर का बुदबुदा, नीर में नीर मिलि नीर हुवा॥

भजन २५

उग्र ज्ञान जब प्रकटे भाई, सबे वाद मिटि जाई हो।
मुक्ति दशा जब आनि तुलानी, त्रिगुण ताप नशि जाई हो॥
पञ्च स्वाद की इच्छा नाहीं, यह जिव ब्रह्म कहाई हो।
अविगति कारण सूक्ष्म स्थूल है, रूप चार दरसाई हो॥
पाप पुण्य की नाहीं आशा, स्वर्ग नरक नहिं जाई हो।
जीव ईश को इक करि जाने, अनुभव अभंग जु आई हो॥
आतम थापि अध्यातम मेटे, अन्ध ज्ञान है भाई हो।
आतम अंश अध्यातम केरा, या मिलि वाको गाई हो॥
यह वह एक भया जब निश्चय, कहन सुनन मिटि जाई हो।
लवन की पुतली जल बिच डारी, देखत गई बिलाई हो॥
वाको खोज चले नहि कतहुँ, जित तित जलहि दिखाई हो।
कहैं कबीर जब या गति आवै, फिर नहिं जन्म धराई हो॥

भजन २६

शब्द उपदेश मैं सबन को कहत हूँ, समुझि कर आपना सूख लीजै।
राग अरु द्वेष सब ईरषा छोड़ि के, आपने जीव का भला कीजै॥
आइ सत्सङ्ग में कुबुधि को दूर करि, सुबुधि सन्तोष मन माहिं धारो।
कहैं कबीर यह शब्द निर्दोष है, आपने जीव का काज सारो॥

भजन २७

आन पड़ा चोरन के नगर, सत्संग बिना जिव तरसे हो ।।
हरि सो हीरा हाथ से खोयो, मुठी बाँधे कंकड़ से हो ।
सत्संगति में लाभ बहुत है. साधु मिलावै हरि से हो ।।
मूरख जन कोई जानत नाहीं, साधु से अमृत बरषे हो ।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, मांगु फाग सतगुरु से हो ।।

भजन २८

सन्तन के संग लाग रे, तेरी अच्छी बनेगी ।।

हंसन की गति हंसही जानै, क्या जाने कोई काग रे ।
सन्तन के संग पूर्ण कमाई, होय बड़ो तेरो भाग रे ।।
ध्रुव की बनी प्रह्लाद की बनगई हरि सुमिरन वैराग रे ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो ! राम भजन को लाग रे ।।

भजन २९

जो कोई या विधि प्रीति लगावै ।

गुरु का नाम ध्यान ना छूटै, परगट ना गुहरावै ।।
कूर्म सुतन को धरते ऊँचे, आप उदर को धावै ।
निशदिन सुरत रहै अण्डनपर, पल भर ना विसरावै ।।
जैसे चातक रटै स्वाति को, सरिता निकट न आवै ।
दीन दयाल लगन हितकारी, स्वाती जल पहुँचावै ।।
फूटि सुगन्ध कंज के जैसे, मधुकर के मन भावै ।
ह्वै गइ साँझ बन्धि गौ सम्पुट, ऐसी भक्ति कहावै ।।
जैसे चकोर शशि तन निरखै, तन की सुधि विसरावै ।
शशि तन रहत एक टक लागो, तब शीतल रस पावै ।।
ऐसी युक्ति करै जो कोई, तब सो भक्त कहावै ।
कहैं कबीर सतगुरु की मूरति, तिहि प्रभु दरश दिखावै ।।

भजन ३०

गुरु दरियाव नहाना हो, जामें दुर्मति भागे ।।
गुरु दरियाव सदा जल निर्मल, पैठत उपजत ज्ञाना हो।
जब लग गुरु दरियाव न पावै, तब लग फिरत भुलाना हो ।।
कोटिन तीर्थ गुरु के चरणन श्रीमुख आप बखाना हो ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! अजर अमर घर जाना हो ।।

भजन ३१

गुरुदेव बिनु जीवकी कल्पना ना मिटै, गुरुदेव बिनु जीवका भला नाहीं
गुरुदेव बिनु जीव का तिमिर फाटै नाहीं,समझविचारकर देख मन माहीं ।।
राह बारीक गुरुदेव ते पाइये, जन्म अनेक का ओट खोलै ।
कहैं कबीर गुरुदेव पूरा मिलै, ज़ीव अरु शीव तब एक तौले ।।

भजन ३२

साधो राम बिना कछु नाहीं ।
रामहि आगे राम ही पीछं, रामहि बोलै माहीं ।।
उत्तर रामहि दक्षिण रामहि, पूरब पश्चिम रामा ।
स्वर्ग पताल महीतल रामा, राम सकल विश्रामा ।।
उठत रामहि बैठत रामहि, जागत सोवत रामा ।
राम बिना कछु और न दरशे, सकल राम के कामा ।।
कायम सदा कबहु ना बिनशैं, बोलनहारा ये ही ।।
सकल चराचर पूरण रामा, निरखो शब्द सनेही ।
एक राम को भजे निरन्तर, एक राम मिलि गावै ।
कहैं कबीर राम के परसे, आपा ठौर न पावै ।।

भजन ३३

अब हम आनन्द के घर पाये ।
जब से दया भई सतगुरु की, अभय निशान बजाये ।।
काम क्रोध की गागर फूटी, ममता गोह बहाये ।
तजि परपंच विविध विध किरिया चरण कमल चित लाये ।।
पाँच तत्व की यह तन गुदरी, सुरतिक टोप लगाये ।
हद घर छाँड़ि बेहद घर आसन, गगन मण्डल मठ छाये ।।
जहँ शशि सूर दिवस नहिं रजनी तहँ जा लाड़ लड़ाये ।
कहहिं कबीर कोई पियाकी पियारी,पिया पिया रटि लाये ।।

भजन ३४

अकथ कहानी पीव की, कछु कहत न आवै ।
गूंगे केरी शरकरा बैठा मुसकावै ।।
भूमि बिना अरु बीज बिना, तत तरुवर भाई ।
बहुते फल परकाशिया, गुरु गम्य लखाई ।।
मन थिर बैठ बिचारिया, रामे लौ लाई ।
झूठी अनुभव बीसरी, थोथी सब भाई ।।
कहत कबीर कछु शक्ति न, गुरु भया सहाई ।
आवन जाना मिट गया, मन मनहि समाई ।।

भजन ३५

अब हम एक एक करि जाना ।
दूजा कहै ताहि को दोजख, जिन तत नहिं पहिचाना ।।
पवन पानि पावक पृथ्वी नभ, एक ज्योति संसारा ।
एक हि खाक गढे बहु भाड़ा, एकहि सिरजन हारा ।।

जैसे बढ़ई काठहि काटै, अगिन न काटे कोई।
एकहि व्यापक है सबही में, रवि स्वरूप है सोई॥
माया मोह करि जगत भुलाना, ग्रंथ देखि गरवाना।
होय निशंक शंक नहिं व्यापे, कहैं कबीर दिवाना॥

भजन ३६

साधो ! सो सतगुरु मोहि भावै।
राम नाम का भरभर प्याला, आप पिवैं मोहि प्यावैं॥
मेले जाय न महन्त कहावैं, पूजा भेट न लावैं।
परदा दूर करै आखिन का, निज दर्शन दिखलावैं॥
जाके दर्शन साहब दरशे, अनहद शब्द सुनावैं।
माया के सुख दुःख समकरि जानै, संग न स्वपन चलावैं॥
निशि दिन सत्संगति में राँचै, शब्द में सुरति समावैं।
कहहिं कबिर ताको भय नाहीं, निर्भय पद परसावैं॥

भजन ३७

पाक गुरु पीर समरथ साहब धनी, बहुत बानी तजी बन्ध खोली।
जीवता मारि कर फेर जीवन किया, बोलिया ब्रह्म निर्वाण बोली॥
खोलि कपाट तब घाट अवघट लहा, अगम अस्थान की बाट पाई।
नाम निर्वाण जपि सन्त निर्भय हुआ, परम सुख धाम जहां मिला जाई॥
परम सुख धाम में परम आनन्द है, पाव ही सतगुरु भक्त सोई।
कहैं कबीर सत्संग ते पावही, काग बुधि त्यागि के हंस होई॥

भजन ३८

दया करी गुरु युक्ति बताई। आपा चीन्हे भर्म नशाई॥
आपा चीन्हे त्रिभुवन सूझै। गुरु प्रताप काल से छूटै॥

बहुरि न भटको रे मन भाई। पाप पुण्य को बीज नशाई ।।
पाप पुण्य दोनों कस बाती। जन्म जन्म इन जारी छाती।
काम कसाई क्रोध चण्डाला। आशा बैरिनी तृष्णा काला ।।
लोभ डौमरो निद्रा डारा। मनसा चोर दिया दुख भारा।।
कनक कामिनी कलहक भाँडो। इन ठगनोंने सब जग डाँड़ों ।।
कैसे छूटे मोहक फन्दा। कैसे पावै खिदमत बन्दा ।।
कैसे भँवर कमल को पावै। कैसे जग जंजाल नशावै ।।
जब सतगुरु सार मत दीन्हा। बड़े भाग से आतम चीन्हा ।।
बड़े भाग से आतम जागे। कहैं कबीर जबहि भ्रम भागे ।।

भजन ३९

भाग बे भाग फकीर के बालके, कनक अरु कामिनी बाघ लागै।
पकड़ के खैंच ले पड़ा चिचियायगा, बड़ा बेवकूफ होय नाहिं भागै ।।
शृंगी ऋषि गोरख पकड़ के यश किया, कोटि उपाय करे नाहिं त्यागे।
कहैं कबीर यह एक उपाय है, बैठे सतसंग में सदा जागे ।।

भजन ४०

क्या देखि दिवाना हूवा रे ।।
माया शूली सार बनी है, नारि नरक का कूवाँ रे।
हाड़ माँस नारी का पिंजर तामें मनुवा सूवा रे।।
भाई बन्धु औ कुटुम्ब कबीला, तामें पचि पचि मूवा रे।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, हार चले जग जूवा रे ।।

भजन ४१

हंसा करले शब्द निबेरा।
फरै देह धरि बहुत चातुगी, मुये कहां घर तेरा ।।

आपा मेटि आपको खोजै, आपे मध्य बसेरा।
आपा मेटि आपको देखो, मिटै सकल यम जेरा ।।
छाड़ो कपट चातुरी तामस, छाड़ो कुमति बसेरा।
ज्ञान गयन्द चढ़ो गुरु गम से, काल होय पुनि चेरा ।।
क्षमा शील सन्तोष धरन धर, शब्द सुरत कर मेला।
भव वारिद जो सहजे उतरो, बाँध लेहु दृढ़ बेरा ।।
सैन उलंघित चलै मोह तजि, सुखसागर किय डेरा।
कहैं कबिर भव वारिद लांघो, दरश होय प्रभु केरा ।।

भजन ४२

याद करो दिन जात बाद में, सतगुरु चरण सनेह विना रे।
जठर अग्नि में बुन्द जमाया, पानि से पिण्ड कियो रचना रे ।।
उहवाँ खान-पान पहुँचावै, ऐसा साहब है अपना रे ।।
नव दश मास गर्भ प्रतिपालै, कर-कर कोटि-कोटि यतना रे।
नाम लेत तोहि लाज लगत है, माया में भुलि रह्यो मना रे ।।
बालापन सब खेल गमाया, तरुणा में कछु नाहिं बना रे।
वृद्ध भये तन आलस उपजी, जीवन मरण रैन स्वपना रे ।।
अवधि घटे जब काल गरासे, उठे हाट तब कछु न बना रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो !, मूल गमाय चले अपना रे ।।

भजन ४३

पवन को साधि के करत उपाधि नर, बासना बीज तो नाहिं छीजै।
दूध अरु भात फिर शरकरा माँगता, दास मनोहर का लाड़ कीजै ।।
कहत है योग अरु रोग को गहत है, योग को मूल तो हाथ नाहीं।
कहैं कबीर नर करत आजीविका, खान अरु पान है चित्त माहीं ।।

भजन ४४

गोविन्द तेरी महिमा अपरंपार ॥
आपहि एक अनेक रूप भौ, नाम धरियो संसार।
जड़ को चेतन चेतन को जड़, करत न लागे बार ॥
रवि शशि पावक सर्व प्रकाशक, खिल रहि अजब बहार।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, हरि भजि उतरिये पार ॥

भजन ४५

अपने घट दियना बार रे ॥
काम का तेल सुरत की बाती, ब्रह्म अग्नि उदगार रे ॥
झूठ जान जगत का नाता, बारम्बार विचार रे।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो! सतगुरु नाम पुकार रे ॥

भजन ४६

कर्मक रेख मिटावो सन्तो, कर्मक रेख मिटावो ॥
शब्द अतीत साधन लेखो, यह तन खाक मिलावो।
ब्रह्म तत्त्व महल में दरशे, तब संन्यास कहावो ॥
पाँचो पकरि एक घर लावो, योग युक्ति लौ लावो।
शिव शक्ति जब एक भये हैं, जिवत परम पद पावो ॥
प्रेमी हंस मिलो साहब सो, वाही लोक सिधावो।
सत की कुंजी दीयो महल की, मुक्त किवार खुलावो ॥
मद मदई कबही मत लावो, दुविधा दूर बहावो।
कहहिं कबीर सुनो भाइ साधो, बहुरि न भव जल आवो ॥

भजन ४७

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥
नव दरवाजा परगट दीसै, दसवाँ द्वार मूँद कुलुफ जड़ तारा है ॥
उलट सर्पिनी गगन सँभारे, षट चक्रन का सोध विचारे ।
मेरु दण्ड सीधा पवन दो धारा है ॥
चन्द्र सूर्य दोउ इक घर लावै, सुषमन सेती ध्यान लगावै ।
तिरवेनी के घाट उतर भव पारा है ॥
गगन मण्डल में उर्धमुख कूवाँ, शूरा होय सो भरभर पीया ।
निगुरा जात पियास हिये अँधियारा है ॥
नेती धोती बस्ती पाई, आसन पवन युगत ठरहाई ।
गम घोड़ा असवार भरम से न्यारा है ॥
शब्द विहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु लेव तारी ।
खुल गये भरम किवार शब्द झनकारा है ॥३॥

भजन ४८

तेरा जन एक साधु है कोई ।
काम क्रोध औ लोभ विवर्जित, हरि पद चीन्है सोई ॥
राजस तामस सात्त्विक तीनों, ये सब तेरी माया ।
चौथे पद को जो जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया ॥
अस्तुति निन्दा आशा छाड़ैं, तजै काम अभिमाना ।
लोहा कञ्चन सम करि देखैं, ते मूरति भगवाना ॥
चिन्ते तो माधव चिन्तामणि, हरि पद रमै उदासा ।
तृष्णा छल अभिमान रहित है, कहैं कबिर सो दासा ॥

॥ आरती ॥

सन्ध्या आरति सुमिरन सोई, सुमिरन करत महा फल होई।
पहली आरति परम प्रकाशा, करम भरम सब कीन्ह विनाशा।
दूसरी आरति दिलहि में देवा, योग मुक्ति से करि ले सेवा।
तीसरि आरति त्रिभुवन सुझैं, गुरु गम ज्ञान अगोचर बूझै।
चौथी आरती चहुँयुग पूजा, गुरु सम देव और नहीं दूजा।
पँचये आरती पद निर्वाना, कहहिं कबीर सत लोक समाना ॥१॥

सन्ध्या आरती सुकृत कीन्हा, हंस उबारि अपन कर लीन्हा।
गगन मंडल बिच फुल इक फूला, तर भो डार उपर भौ मूला।
गगन मंडल बिच आरती साजै, सोऽहम् हंसा आनि बिराजै।
तत निःतत में जाय समाना, देखहु द्वीप अधर अस्थाना।
कहै कबीर सुनो साधो भाई, अजर अमर घर रहा समाई ॥२॥

ऐसी आरती घुरे निशाना, सुनहु चित दै सन्त सुजाना।
जिह्वा बचन झूठ मत भाखो, सत्य शब्द में मन गही राखो।
पर धन त्यागो और पर नारी, शब्द अनाहत लेहु बिचारी।
काम क्रोध छाड़हु यम लक्षण, हंस दशा धरि होहु सुलक्षण।
तन मन से परिचय करू भाई, बिनु परिचय यम हाथ बिकाई।

छाड़हु दूर-दूर केर बसेरा, उलट मिलै सोऽहं सोऽहं मेरा।
पाखण्ड वेष तजो चतुराई, सन्त सुकृति सब होहिं सहाई।
आशा तृष्णा तजो विकारा, सो ज्ञानी कहिये तत सारा।
सन्त विवेकी शीतल अंगा,, अग्रवास जस चन्दन संगा।
प्रेम प्रकाश भक्ति लौ लीना, निर्मल कबहुँ न होय मलीना।

निर्मल सोइ जिहि संशय नाहीं, आपा मध्ये आप समाही।
कहहिं कबीर सन्त सुखदाई, अजर अमर स्थिर घर निज भाई।

॥ मङ्गल ॥

चल सत गुरु के हाट, ज्ञान बुद्धि लाइये ।
लीजिए साहब के नाम, परम पद पाइये ॥
करता सब कछु दीन देने को कछु ना रही ।
तुमही अभागिन नारि, सुख तजि दुःख लही ॥
गई थी पिया के महल, पिया संग ना रची ।
हृदय कपट रहे छाय, कुमति लज्जा बसी ॥
चलो रि सुहागिन नारि, महल की गम करो ।
खोलो कपट किवार, पिया सो मिलि रहो ॥
जो गुरु रूठे होय तो तुरत मनाइये ।
होय के दीन अधीन, चूक बकसाइये ॥
जो गुरु होंहि दयाल, दया करि हेरहिं ।
कोटि कर्म कटि जाय, पलक चित फेरहिं ॥
भलो बनो संयोग, प्रेम का चोलन ।
तन मन अर्पो शीश, साहब हँसि बोलना ॥
कहैं कबीर समुझाय, समुझ हृदय धरो ।
युगन युगन केर राज, तो दुर्मति परिहरो ॥१॥
सतगुरु दीनदयाल, काल भय मेटिया ।
दीन्हा दीपक ज्ञान, अमर बर भेंटिया ॥
हरि देखन की चाव, गई सत्संग में ।
बढ्यो अधिक सनेह, भिज्यो हरि रंग में ॥
देखयो अलख अपार, अखण्डित पूर है ।
झिलमिल झिलमिल होय, सोई हरि नूर है ॥
अग्नि जलै जल माँहि, सिन्धु बिनु पात है ।
वहाँ भानु गम नाहिं, जहाँ मोर लाल है ॥
एक शून्य दो शून्य, शून्य लख चार है ।
जानै गुरु मुख सन्त, विवेक विचार है ॥
कहै कबीर बिचारि, सन्त भल पावई ।
बस अमर घर जाय, बहुरि नहिं आवई ॥

—०—

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

(१) श्री कबीर कीर्ति मन्दिर

सी० २६।१ सन्तकबीर रोड

वाराणसी (उ० प्र०)

(२) विश्व विद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी ।

(३) शिवशंकर सिंह

बी० १।७२ अस्सी

वाराणसी (उ० प्र०)

(४) सन्तगुरु सेवी 'सुजन'

(श्री कबीर ज्ञान प्रचारक)

पुनः प्रकाशन प्रकाशकाधीन ।

दुनियां अजब दिवानी ।
मोरी कही एक ना मानी ॥
तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर ।
इत उत फिरत भुलानी ॥

तीरथ मूरत पूजत डोलै ।
कंकड़ पत्थर पानी ॥
विषय वासना के फन्दे परि ।
मोह जाल उरझानी ॥

सुख को दुःख दुखको सुख मानै ।
हित अनहित नहि जानी ॥
औरन को मूरख ठहरावत ।
आपे बनत सयानी ॥

सांच कहौं तो मारन धावै ।
झुठे को पतियानी ॥
कहैं कबीर कहां लगि वरणौं ।
अद्भुत खेल बखानी ॥

मुद्रक :
हिमालय प्रेस, लोहटिया, बाराणसी ।

